

229.3

~~वीर।वी~~  
मिश्र।मि।वी





February

UTTAR PRADESH

1930.

CIVIL SECRETARIAT LIBRARY.

Acc. No. 10023 LIB 10 5

THE

CHOWKHAMBĀ SANSKRIT SERIES,

A

COLLECTION OF RARE & EXTRAORDINARY SANSKRIT WORKS.

NO. 386

# वीरमित्रोदयः

व्यवहारप्रकाशः ।

महामहोपाध्यायश्रीमित्रमिश्रविरचितः ।

साहित्योपाध्यायविष्णुप्रसादशर्मणा

संशोधितः ।

VĪRAMITRODAYA,  
VYAVAHĀRAPRAKĀS'Ā

By

MAHAMAHO PĀDHYĀYA PĀNDITA MITRA MIS'RA.

EDITED BY

Pandita Visnu Prasāda Bhāṇḍārī.

VOL. VII

Fasciculas II-२.

PUBLISHED & SOLD BY THE SECRETARY,

CHOWK

E

RIES OFFICE.

Vidya Vilas Press, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84, 85, 86, 87, 88, 89, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 103, 104, 105, 106, 107, 108, 109, 110, 111, 112, 113, 114, 115, 116, 117, 118, 119, 120, 121, 122, 123, 124, 125, 126, 127, 128, 129, 130, 131, 132, 133, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 140, 141, 142, 143, 144, 145, 146, 147, 148, 149, 150, 151, 152, 153, 154, 155, 156, 157, 158, 159, 160, 161, 162, 163, 164, 165, 166, 167, 168, 169, 170, 171, 172, 173, 174, 175, 176, 177, 178, 179, 180, 181, 182, 183, 184, 185, 186, 187, 188, 189, 190, 191, 192, 193, 194, 195, 196, 197, 198, 199, 200, 201, 202, 203, 204, 205, 206, 207, 208, 209, 210, 211, 212, 213, 214, 215, 216, 217, 218, 219, 220, 221, 222, 223, 224, 225, 226, 227, 228, 229, 230, 231, 232, 233, 234, 235, 236, 237, 238, 239, 240, 241, 242, 243, 244, 245, 246, 247, 248, 249, 250, 251, 252, 253, 254, 255, 256, 257, 258, 259, 260, 261, 262, 263, 264, 265, 266, 267, 268, 269, 270, 271, 272, 273, 274, 275, 276, 277, 278, 279, 280, 281, 282, 283, 284, 285, 286, 287, 288, 289, 290, 291, 292, 293, 294, 295, 296, 297, 298, 299, 300, 301, 302, 303, 304, 305, 306, 307, 308, 309, 310, 311, 312, 313, 314, 315, 316, 317, 318, 319, 320, 321, 322, 323, 324, 325, 326, 327, 328, 329, 330, 331, 332, 333, 334, 335, 336, 337, 338, 339, 340, 341, 342, 343, 344, 345, 346, 347, 348, 349, 350, 351, 352, 353, 354, 355, 356, 357, 358, 359, 360, 361, 362, 363, 364, 365, 366, 367, 368, 369, 370, 371, 372, 373, 374, 375, 376, 377, 378, 379, 380, 381, 382, 383, 384, 385, 386, 387, 388, 389, 390, 391, 392, 393, 394, 395, 396, 397, 398, 399, 400, 401, 402, 403, 404, 405, 406, 407, 408, 409, 410, 411, 412, 413, 414, 415, 416, 417, 418, 419, 420, 421, 422, 423, 424, 425, 426, 427, 428, 429, 430, 431, 432, 433, 434, 435, 436, 437, 438, 439, 440, 441, 442, 443, 444, 445, 446, 447, 448, 449, 450, 451, 452, 453, 454, 455, 456, 457, 458, 459, 460, 461, 462, 463, 464, 465, 466, 467, 468, 469, 470, 471, 472, 473, 474, 475, 476, 477, 478, 479, 480, 481, 482, 483, 484, 485, 486, 487, 488, 489, 490, 491, 492, 493, 494, 495, 496, 497, 498, 499, 500, 501, 502, 503, 504, 505, 506, 507, 508, 509, 510, 511, 512, 513, 514, 515, 516, 517, 518, 519, 520, 521, 522, 523, 524, 525, 526, 527, 528, 529, 530, 531, 532, 533, 534, 535, 536, 537, 538, 539, 540, 541, 542, 543, 544, 545, 546, 547, 548, 549, 550, 551, 552, 553, 554, 555, 556, 557, 558, 559, 560, 561, 562, 563, 564, 565, 566, 567, 568, 569, 570, 571, 572, 573, 574, 575, 576, 577, 578, 579, 580, 581, 582, 583, 584, 585, 586, 587, 588, 589, 590, 591, 592, 593, 594, 595, 596, 597, 598, 599, 600, 601, 602, 603, 604, 605, 606, 607, 608, 609, 610, 611, 612, 613, 614, 615, 616, 617, 618, 619, 620, 621, 622, 623, 624, 625, 626, 627, 628, 629, 630, 631, 632, 633, 634, 635, 636, 637, 638, 639, 640, 641, 642, 643, 644, 645, 646, 647, 648, 649, 650, 651, 652, 653, 654, 655, 656, 657, 658, 659, 660, 661, 662, 663, 664, 665, 666, 667, 668, 669, 670, 671, 672, 673, 674, 675, 676, 677, 678, 679, 680, 681, 682, 683, 684, 685, 686, 687, 688, 689, 690, 691, 692, 693, 694, 695, 696, 697, 698, 699, 700, 701, 702, 703, 704, 705, 706, 707, 708, 709, 710, 711, 712, 713, 714, 715, 716, 717, 718, 719, 720, 721, 722, 723, 724, 725, 726, 727, 728, 729, 730, 731, 732, 733, 734, 735, 736, 737, 738, 739, 740, 741, 742, 743, 744, 745, 746, 747, 748, 749, 750, 751, 752, 753, 754, 755, 756, 757, 758, 759, 760, 761, 762, 763, 764, 765, 766, 767, 768, 769, 770, 771, 772, 773, 774, 775, 776, 777, 778, 779, 780, 781, 782, 783, 784, 785, 786, 787, 788, 789, 790, 791, 792, 793, 794, 795, 796, 797, 798, 799, 800, 801, 802, 803, 804, 805, 806, 807, 808, 809, 810, 811, 812, 813, 814, 815, 816, 817, 818, 819, 820, 821, 822, 823, 824, 825, 826, 827, 828, 829, 830, 831, 832, 833, 834, 835, 836, 837, 838, 839, 840, 841, 842, 843, 844, 845, 846, 847, 848, 849, 850, 851, 852, 853, 854, 855, 856, 857, 858, 859, 860, 861, 862, 863, 864, 865, 866, 867, 868, 869, 870, 871, 872, 873, 874, 875, 876, 877, 878, 879, 880, 881, 882, 883, 884, 885, 886, 887, 888, 889, 890, 891, 892, 893, 894, 895, 896, 897, 898, 899, 900, 901, 902, 903, 904, 905, 906, 907, 908, 909, 910, 911, 912, 913, 914, 915, 916, 917, 918, 919, 920, 921, 922, 923, 924, 925, 926, 927, 928, 929, 930, 931, 932, 933, 934, 935, 936, 937, 938, 939, 940, 941, 942, 943, 944, 945, 946, 947, 948, 949, 950, 951, 952, 953, 954, 955, 956, 957, 958, 959, 960, 961, 962, 963, 964, 965, 966, 967, 968, 969, 970, 971, 972, 973, 974, 975, 976, 977, 978, 979, 980, 981, 982, 983, 984, 985, 986, 987, 988, 989, 990, 991, 992, 993, 994, 995, 996, 997, 998, 999, 1000.

1929.

UNIVERSAL

BOOK DEPOT

LIBRARY



आनन्दवनविद्योतिसुमनोभिः सुसंस्कृता ।  
 सुवर्णाऽङ्कितभव्याभशतपत्रपरिष्कृता ॥ १ ॥  
 चौखम्बा-संस्कृतग्रन्थमाला मञ्जुलदर्शना ।  
 रसिकालिकुलं कुर्यादमन्दाऽऽमोदमोहितम् ॥ २ ॥  
 स्तवकः—३८६

तस्मिन् प्रकाशितं  
 Printed by Jagat Krishna Das Gupta  
 at the Vidya Vilas Press, Benares.

12090

मदन लाल

### Agents:

- 1 Otto Harrassowitz, Leipzig:  
GERMANY.
- 2 Arthur Probsthain,  
Oriental & Foreign Bookseller,  
LONDON.
- 3 The Oriental Book-supplying Agency,  
POONA.



कादिकृतव्यवहारः । विनाशे त्याग इति न सामानाधिकरण्यम् ।  
किन्तु विनाशे सति यत्र त्याग एव सम्पद्यत इत्यर्थेनैक एव विषय  
इति कल्पतरुत्नाकरौ । तन्न । सति सप्तम्यनुषङ्गयोः प्रतीतिविपरीतयोः  
कल्पनानुपपत्तेर्वाशब्दस्वरसाच्च पृथग्विषयताया एवौचित्यात् । वस्तु-  
तस्तु विनाशस्त्याग एव वेति प्रथमान्त एव पाठः । तथाचायमर्थः—  
यत्रोत्तरदानविलम्बे सति गौरवं वस्तुनो मूल्यादिकृतं व्यपैति, वस्तुन  
एव वा विनाशो ध्वंसः त्यागः प्रच्यवो वा भवति, तत्रोत्तरदानकालमेका-  
दादिरूपं न कुर्वीत सद्य एवोत्तरं दापयेदित्यभिप्रायः ।

बृहस्पतिकात्यायनौ—

साहसस्तेयपारुष्यगोऽभिशापे तथात्यये ।

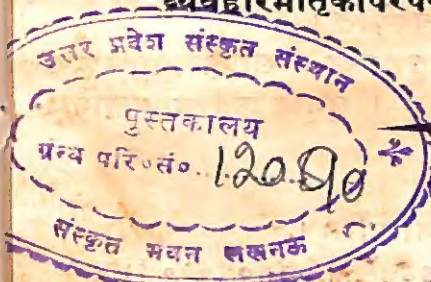
भूमौ विवादयेत् क्षिप्रमकालेऽपि बृहस्पतिः ॥

अभिशापान्तो द्वन्द्वैकवद्भावः । अकाले=राज्यादावपि । बृहस्पतिरि-  
दमाहेत्यर्थः ।

इत्युत्तरदाने विलम्बाविलम्बव्यवस्था ।

समाप्ता च विशेषपरिभाषा ।

इति श्रीमत्सकलसामन्तचक्रचूडामणिमरीचिमञ्जरीनिराजितचरणकमल-  
श्रीमन्महाराजाधिराजप्रतापसूदनृज-श्रीमन्महाराजमधुकरसाहसूनु-  
श्रीमन्महाराजाधिराजचतुर्दधिलजलबलयवसुन्धराहृदय-  
पुण्डरीकविकाशदिनकर-  
श्रीवीरसिंहदेवोद्योजित-श्रीहंसपण्डितात्मज-श्रीपरशुरामसूनु-  
सकलविद्यापारावारपारीणधुरीणजगद्धारिद्रव्य-  
महागजपारीन्द्रविद्वज्जनजीवातु-  
श्रीमन्मित्रमिश्रकृते श्रीवीरमित्रोदयाभिधनिबन्धे व्यवहारप्रकाशे  
परिभाषापरिष्काराख्यं  
व्यवहारमातृकापरपर्यायं प्रथमप्रकरणम् ॥ १ ॥





## अथ प्रमाणनिरूपणाख्यं द्वितीयं प्रकरणमारभ्यते ।

तत्र प्रमाणभेदप्रमाणविषयव्यवस्थे क्रियापादप्रस्तावे विविके । अधुना साक्ष्यादिप्रमाणानामवान्तरभेदः प्रस्तूयते । तत्र साक्षिस्वरूपमाह—

मनुः,

समक्षदर्शनात् साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्ध्यति । इति । (अ०८।श्लो०७४)  
समक्षदर्शनस्य साक्ष्यहेतुत्वं पाणिनिरपि स्मरति—“साक्षाद्दृष्टिं संज्ञायाम्” (अ०५पा०२सू०११) इति । तच्च व्युत्पत्तिमात्रमव्यापकत्वात् । श्रुतसाक्ष्यादीनामपि साक्षित्वव्यवहारविषयत्वात् । अत एव श्रवणादित्युपलक्षणम् । प्रमाणमात्रस्य विवादविषयप्रमाता साक्षीति विवक्षितम् । साक्षिप्रयोजनमाह—

नारदः,

सन्दिग्धेषु तु कार्येषु द्वयोर्विवदमानयोः ।  
दृष्टश्रुतानुभूतत्वात्साक्षिभ्यो व्यक्तिदर्शनम् ॥ इति । (व्य०प०१०।१४७)  
दृष्टश्रुताभ्यामनुभूतत्वादित्यर्थः । यद्वा दृष्टत्वात् श्रुतत्वादनुभूतत्वा-  
च्चेत्यर्थः । अनुभूतत्वादित्यनेन च गोवृषन्यायेन प्रमाणान्तरजन्योऽनु-  
भवो गृह्यते । व्यक्तिदर्शनं=विवेकज्ञानम् ।

कात्यायनः—

अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यादनुभूतं तु यज्जवेत् ।  
तद्वाह्यं साक्षिणो वाक्यमन्यथा न बृहस्पतिः ॥  
अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यादनुभूतमिति मुख्यः कल्पः । तदसान्निध्येऽपि  
श्रवणादिना साक्ष्यस्य वचनान्तरैरनुमतत्वात् । तच्च साक्षिभेदनिरूपणे  
व्यक्तीभविष्यति ।

गौतमः—

विप्रतिपत्तौ साक्षिनिमित्ता व्यवस्थेति ।  
स च साक्षी प्रथमं द्विविधः । कृतोऽकृतश्च । साक्षित्वेनार्थिप्रत्य-  
र्थिभ्यां निरूपितः कृतः । अनिरूपितोऽकृतः । पुनश्च कृतस्य पञ्चविध-  
त्वादकृतस्य षड्विधत्वादेकादशविधः ।

यथाह नारदः—

एकादशविधः साक्षी शास्त्रे दृष्टो मनीषिभिः ।  
कृतः पञ्चविधस्तेषां षड्विधोऽकृत उच्यते ॥ (व्य०प०१०।१४९)

लिखितः स्मारितश्चैव यदृच्छामिज्ञ एव च ।

गूढश्चोत्तरसाक्षी च साक्षी पञ्चविधः कृतः ॥ इति । (व्य०प०१०।१५०)

पञ्चानामपि कात्यायनेन स्वरूपमभिहितम्--

अर्थिना स्वयमानीतो यो लेख्ये सन्निवेश्यते ।

स साक्षी लिखितो नाम स्मारितः पत्रकादृते ॥ इति ।

स्मारितः पत्रकादृते इत्यपि विवृतं तेनैव--

यस्तु कार्यप्रसिद्ध्यर्थं दृष्ट्वा कार्यं पुनः पुन ।

स्मार्यते ह्यर्थिना साक्षी स स्मारित इहोच्यते ॥

दृष्ट्वेति दर्शयित्वेत्यन्तर्भावितण्यर्थः । कार्यं=व्यवहारपदं दर्शयित्वा

प्रमाप्य कार्यप्रसिद्ध्यर्थं=कालान्तरे व्यवहारनिर्णयसिद्ध्यर्थं पुनः पुनः

स्मार्यते कार्यमेव विस्मरणनिरासाय यः स स्मारितो नाम साक्षी-

त्यर्थः । यस्तु यदृच्छया प्रसङ्गादागतस्त्वमत्र साक्षी भवेति साक्षित्वेन

निरूप्यते स यदृच्छामिज्ञः । स्मारितस्यास्य च पत्रानारूढत्वेन साम्ये-

पि स्वरूपभेदः स्पष्टोऽपि तेनैव विवृतः--

प्रयोजनार्थमानीतः प्रसङ्गादागतश्च यः ।

द्वौ साक्षिणौ त्वलिखितौ पूर्वपक्षस्य साधकौ ॥ इति ।

गूढमाह--

अर्थिना स्वार्थसिद्ध्यर्थं प्रत्यर्थिवचनं स्फुटम् ।

यः श्राव्यते स्थितो गूढो गूढसाक्षी स उच्यते ॥ इति ।

उत्तरसाक्षिस्वरूपमाह--

साक्षिणामपि यः साक्ष्यमुपयुक्तं परि भाषते ।

श्रवणाच्छ्रावणाद्वापि स साक्ष्युत्तरसंज्ञितः ॥ इति ।

षड्विधस्याप्यकृतस्य भेदो नारदेनैव दर्शितः--

ग्रामश्च प्राड्विवाकश्च राजा च व्यवहारिणाम् ॥

कार्येष्वधिकृतो यः स्यादर्थिना प्रहितश्च यः ।

कुल्याः कुलविवादेषु विज्ञेयास्तेऽपि साक्षिणः ॥ (व्य०प०१०।१५१।१५२)

प्राड्विवाकग्रहणं लेखकसभ्ययोरुपलक्षणम् ।

लेखकः प्राड्विवाकश्च सभ्याश्चैवानुपूर्वशः ।

नृपे पश्यति तत्कार्यं साक्षिणः समुदाहृताः ॥

इति वचनात् । बृहस्पतिस्तु लेखितमधिकमादायैतानेव द्वादश सा-  
क्षिण आह--

लिखितो लेखितो गूढः स्मारितः कुल्यदूतकौ ॥

यादृच्छिकश्चोत्तरश्च कार्यमध्यगतोऽपरः ॥



नृपोऽध्यक्षस्तथा ग्रामः साक्षी द्वादशधा स्मृतः ॥ इति ।  
तल्लक्षणान्यपि कानिचिद्वल्लक्षणानि कानिचित्पूर्वसंवादीन्याह--  
स एव,

प्रभेदमेषां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।  
जातिनामाभिलिखितं येन स्वं पित्र्यमेव च ॥  
निवासश्च स विज्ञेयः साक्षी लिखितसंज्ञकः ।  
अर्थिना च क्रियाभेदैस्तस्य कृत्वा ऋणादिकम् ॥  
प्रत्यक्षं लिख्यते यस्तु लेखितः स उदाहृतः ।  
कुड्यव्यवहितो यस्तु श्राव्यते ऋणिभाषितम् ॥  
विनिन्द्यते यथाभूतं गूढसाक्षी स कीर्तितः ।  
आहूय यः कृतः साक्षी ऋणन्यासक्रियादिके ॥  
स्मार्थते यो मुहुश्चैव स्मारितः सोऽभिधीयते ।  
विभागदाने विपणे ज्ञातिर्यत्रोपदिश्यते ॥  
द्वयोः समानो धर्मज्ञः स कुल्यः परिकीर्तितः ।  
अर्थिप्रत्यर्थिवचनं शृणुयात्प्रेषितस्तु यः ॥  
उभयोः सम्मतः साधुर्दूतकः स उदाहृतः ।  
क्रियमाणे च कर्त्तव्ये यः कश्चित्स्वयमागतः ॥  
अत्र साक्षित्वमस्माकमुक्तो यादृच्छिकस्तु सः ।  
यस्तु साक्षी दिशं गच्छेत् मुमूर्षुर्वा यथाश्रुतम् ॥  
अन्यं संश्रावयेत्तं तु विद्यादुत्तरसाक्षिणम् ।  
उभाभ्यां यस्य विश्वस्तं कार्यं वापि निवेदितम् ॥  
गूढचारी स विज्ञेयः कार्यमध्यगतस्तथा ।  
अर्थिप्रत्यर्थिनोर्वाक्यं यच्छ्रुतं भूभृता स्वयम् ॥  
स एव तत्र साक्षी स्याद्विसंवादे द्वयोरपि ।  
निर्णीते व्यवहारे तु पुनर्न्यायो यदा भवेत् ॥  
अध्यक्षः सभ्यसहितः साक्षी स्यात् तत्र नान्यथा ।  
दूषितं घातितं यच्च सीमायास्तु समन्ततः ॥  
अकृतोऽपि भवेत्साक्षी ग्रामस्तत्र न संशयः । इति ।

लिखितलेखितयोः स्वपरलिखनमात्रभेदादेकादशद्वादशलक्ष्णयो-  
रविरोधः । सर्वे च यथासम्भवं दृष्टश्रुतरूपद्विविधसाक्षिभेदा ज्ञेयाः ।  
क्रियाभेदैर्व्यवहारप्रकारभेदैः । तस्य=प्रत्यर्थिनः । ऋणादिकमित्यादिशब्दात्  
यथासम्भवं सर्वविवादपदनिर्दानम् । कुड्यग्रहणं व्यवधायकोपलक्ष-  
णम् । विनिन्द्यते इति भावे क्तः । निहवे सम्भावित इति शेषः । इत्युक्तं



इतीतिशब्दाध्याहारः । दिशे=देशान्तरम् । तम्=अन्यमित्यर्थः । उभाभ्याम्=अर्थिप्रत्यर्थिभ्याम् । यस्य विश्वस्तं=यदीयोविश्वासः कृत इति सम्बन्धसामान्यविवक्षया पृष्ठां भावे कं चाभ्युपेत्य व्याख्येयम् । गूढचारी कार्यमध्यगतश्चेत्येकस्यैव संज्ञाद्वयमिति द्वादशत्वाविरोधः । दूतग्रहणं लेखकस्यापि प्रदर्शनार्थम् । “दूतकः खटिकाग्राही” इति बृहस्पतिवचनात् । ग्रामग्रहणमप्यकृतसाक्ष्युपलक्षणम् । येन योऽर्थः प्रमितस्तत्र साक्षित्वेन प्रागनिरूपितोऽपि पश्चात्साक्षित्वेन विज्ञायोपन्यस्तः पृष्ठश्च समायां साक्ष्यं दातुमर्हतीति फलितोऽर्थः । इतरथा वेतनादानादिषु लिखिताद्यसम्भवे साक्ष्यभावप्रसङ्गः । इदमेवाभिसन्धायाह—

मनुः,

यत्रानिवद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किञ्चन ।

पृष्ठस्तत्रापि तद्ब्रूयात् यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ( अ०८।श्लो०७६ )

अनिबद्धोऽकृतः । कल्पतरुमदनरत्नयोः अर्थिक्रियां क्रियाभेदैरिति पठितम् । तत्रार्थिक्रियाम्=अर्थिव्यवहारं क्रियाभेदैः=प्रमाणविशेषैराप्तवाक्यादिभिः तस्य कृत्वा तत्सम्बन्धितयावधार्य ऋणादिके विवादविषये यः प्रत्यक्षं=प्रत्यर्थिसमक्षं लेख्यतेऽर्थिनेत्यर्थात् स तत्र लेखितः साक्षीति व्याख्येयम् । कालावधिरपि साक्ष्ये स्मर्यते—

सुदीर्घेणापि कालेन लिखितः सिद्धिमाप्नुयात् ।

संज्ञानन्नात्मनो लेख्यमजानन्तं तु लेखयेत् ॥

सम्यग्ज्ञानन्नात्मनो लेख्यं कुर्यादिति शेषः । अजानन्तं=लिप्यनभिज्ञमात्मानमन्यद्वारा साक्ष्यहमत्रेति लेखयेत् । स द्विविधोऽपि लिखितः साक्षी चिरकालेनापि सिद्धिं निर्णायकतामाप्नुयादित्यर्थः ।

कात्यायनः—

अथ स्वहस्तेनारूढस्तिष्ठंश्चैकः स एव तु ।

न चेत्प्रत्यभिजानीयात् तत् स्वहस्तैः प्रसाधयेत् ॥

नारदः—

आष्टमाद्वत्सरात्सिद्धिः स्मारितस्येह साक्षिणः । ( व्य०प०१० )

आपञ्चमात् तथा सिद्धिर्यदृच्छोपगतस्य तु ॥ ( १६८ )

आतृतीयात् तथा वर्षात् सिद्धिर्गूढस्य साक्षिणः ।

आसंवत्सरात्सिद्धिं तु वदन्त्युत्तरसाक्षिणः ॥ इति । ( १६९ )

इदं च प्रायोवादेन । यतः स एवाह—

अथवा कालनियमो न दृष्टः साक्षिणं प्रति ।

स्मृत्यपेक्षं हि साक्षित्वमाहुः शास्त्रविदो जनाः ॥ ( १७० )



# ११० वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणम् ०

यस्य नोपहता बुद्धिः स्मृतिः श्रोत्रं च नित्यशः ।  
सुदीर्घेणापि कालेन स वै साक्षित्वमर्हति ॥ ( १७१ )  
ते च साक्षिणः कीदृशाः कार्य्या इत्यपेक्षयामाह—

मनुः,

यादृशा अर्थिभिः (१)कार्य्या व्यवहारेषु साक्षिणः ।

तादृशान् सम्प्रवक्ष्यामि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविद्वद्रथोनयः ।

अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये कंचिदनापदि ॥

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्य्येषु साक्षिणः ।

सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतास्तु वर्जयेत् ॥ (अ०८।६१।६२।६३)

मौलाः=प्रख्यातकुलोद्भवा इति कल्पतरुः । मूलं पूर्ववृत्तान्तस्तद्वि-  
दन्तीति मौलाः । “तदधीति तद्वेद” (४।२।५९) इत्याणीति मदनरत्ने । वक्ष्यमा-  
णयाज्ञवल्क्यवचनसंवादात्साक्षित्वेनैव पूर्ववृत्तान्तवेदित्वाक्षेपात्तदर्थक-  
मौलपदानर्थक्यप्रसङ्गाच्च कल्पतरुव्याख्यानमेव सम्यक् । रत्नाकरेऽपि मौलाः  
कुलीना इत्येवं व्याख्यातम् । मूलं प्रतिष्ठा सा येषामस्ति ते मौलाः ।  
अर्थकथनमेतत् । तद्विदस्तु भवार्थ एव कर्त्तव्यः । यो हि यत्र भवः  
सोऽपि तस्यास्तीत्याविरुद्धमिति वदन् मेधातिथिरपीममर्थमनुमन्यते ।  
प्रतिष्ठान्तरस्य साक्षिलक्षणानुपयोगात् । पुत्रादिप्रतिष्ठायाः पदान्तरै-  
रेवोपादानात् । अत्र क्षत्रियादिग्रहणं नात्यन्तिकब्राह्मणव्युदासपरं,  
किन्तु सति सम्भवेऽनेकाध्यापनाग्निहोत्रादिकार्य्यव्यग्रस्य तस्य न सा-  
क्षित्वम् । साक्ष्यन्तरासम्भवे तु तस्यापि साक्षित्वं भवत्येव । अतएव  
ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेदेति तस्यापि साक्षित्वेन प्रश्नप्रकारविधिरुपपद्यत  
इति ध्येयम् । अर्थ्युक्ता=अर्थिना ममेते साक्षिणः सन्तीति निर्दिष्टा नतु  
स्वयमेवागत्य वयमत्र साक्षिणः स्म इति वदन्तः ।

याज्ञवल्क्यः—

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः । ( अ०२ )

धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ॥ ( ६८ )

व्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्त्तक्रियापराः ।

यथाजाति यथावर्ण सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः ॥ ( ६९ )

व्यवराः=त्रिभ्यो न्यूना न भवन्ति परतस्तु यथेच्छं भवन्तीत्यर्थः ।  
जातयोः=मूर्धावसिक्तादयः । वर्णाः=ब्राह्मणादयः । तथाच मूर्धावसिक्ता-



दीनां मूर्धावसिकादयो ब्राह्मणादयो ब्राह्मणादीनां साक्षित्वेनोपा-  
देयाः । असम्भवे सर्वे=सर्वजातीयाः सर्वेषु=सर्वजातीयेषु वादिप्रतिवादिषु  
साक्षिणो ग्राह्या इत्यर्थः ।

प्यासः--

धर्मज्ञाः पुत्रिणो मौलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।  
श्रौतस्मार्त्तक्रियायुक्ता विगतद्वेषमत्सराः ॥  
श्रोत्रिया नपराधीनाः सूर्यश्चाप्रवासिनः ।  
युवानः सक्षिणः कार्य्या ऋणादिषु विजानता ॥ इति ।

कात्यायनः--

प्रख्यातकुलशीलाश्च लोभमोहविवर्जिताः ।  
आप्ताः शिष्टा विबुद्धा ये तेषां वाक्यमसंशयम् ॥  
विभाव्यो वादिना यादृक् सहशैरेव भावयेत् ।  
नोक्तृष्टश्चावकृष्टस्तु साक्षिभिर्भावयेत्सदा ॥ इति ।

आप्ताः=यथार्थवादिनः । विबुद्धा=विवादविषयीभूतार्थज्ञानवन्तः शा-  
स्त्रार्थज्ञानवन्तश्च । "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च" ( ३२।१८८ ) इति  
कर्त्तरि कः । "आदिकर्मणि" ( ३।४।७१ ) इति मदनरत्ने । तेषां वाक्य-  
मसंशयं यथा भवति तथा वादिना विभाव्योऽङ्गीकारयितव्योऽर्थात्प्रति-  
वादी । तत्र विशेषमाह--यादृक् प्रतिवादी तत्सदृशैस्तज्जातीयैरेव  
भावयेत् । वादिनेत्युपलक्षणम् । वाद्यपि प्रतिवादिना तज्जातीयैरेव  
विभाव्यः ।

तथा च नारदः--

श्रेणीषु श्रेणिपुरुषाः स्वेषु वर्गेषु वर्गिणः ।  
बहिर्वासिषु बाह्याः स्युः स्त्रियः स्त्रीषु च साक्षिणः ॥ इति । ७  
( व्य० प० १०।१५।१५ )

मनुरपि--

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।  
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ ( ८।६८ )  
श्रेणिपुरुषाणां सत्यपि वर्गित्वे पृथङ्निर्देशो गोवृषन्यायेन । प्रयो-  
जनं चात्राप्यभ्यर्हितत्वबोधनम् । वर्गिणश्च दर्शिताः--

कात्यायनेन,

लिङ्गिनः श्रेणिपूगाश्च वर्णिग्व्रातास्तथापरे ।

समूहस्थाश्च ये चान्ये वर्गस्तानवर्गीकृभृगुः ॥

दासत्वारणमल्लानां हस्त्यश्वायुधजीविनाम् ॥



## ११२ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

प्रत्येकैकं समूहानां नायका वर्गिणः स्मृताः ।

तेषां वादः स्ववर्गेषु वर्गिणस्तेषु साक्षिणः ॥

अत्र सर्वत्र न्यूनाधिकविशेषणोपादानं न दोषाय । अनृतभाषणभी-  
रुत्वसत्यवदनशीलत्वस्य च साक्षित्वप्रयोजकस्योपलक्षणार्थत्वात्ते-  
षाम् । तेच साक्षिणः कियत्सङ्ख्याकाः कुत्र ग्राह्या इत्यपेक्षायामाह—  
बृहस्पतिः,

नव सप्त पञ्च वा स्युश्चत्वारस्तथा एव वा ।

उभौ वा श्रोत्रियौ स्यातौ नैकं पृच्छेत्कदाचन ॥

लिखितादिषु स एवाह—

लिखितौ द्वौ तथा गृहौ त्रिचतुष्पञ्च लेखिताः ।

यदृच्छाः स्मारिताः कुल्यास्तथा चोत्तरसाक्षिणः ॥

दुतकः खटिकाग्राही कार्यमध्यगतस्तथा ।

एक एव प्रमाणं स्यान्नृपोऽध्यक्षस्तथैव च ॥

खटिकाग्राही=गणकः । एक एवेत्येवकारो वाद्यपेक्षया 'नैकं पृच्छे-  
त्कदाचन' इत्यनेनाक्ताया अनावश्यकत्वार्थो न नियमार्थोऽदृष्टार्थत्व-  
प्रसङ्गात् । "इत्यवराः साक्षिणो ज्ञेया" इति योगेश्वरीयमप्येतदभिप्राय-  
कमेव । लिखितादीनामुभयानुमतत्वे ग्राह्यत्वमेकस्यापीत्याह योगेश्वरः—

उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्मवित् ।

यद्यपि श्रौतस्मार्त्तक्रियापरा धर्मप्रधाना इत्यादिविशेषणोपादानात्  
इत्यवरानामपि धर्मवित्त्वं समानम् । तथापि तेषामुभयानुमतानामपि  
भवत्येव साक्षित्वम् । द्वयोरेकस्य चोभयानुमत्यैवेति भेद इति मिताक्षरा ।  
नारदोऽपि—

उभयानुमतो यः स्याद्वयोर्विवदमानयोः ।

(१) स साक्ष्येकोऽपि साक्षित्वे प्रष्टव्यः स्यान्न संसदि । (व्य० प० १०।१२२)

आप्तत्वेन राजादिभिरवधारितोऽप्येकः साक्षीत्याह—

व्यासः,

शुचिक्रियश्च धर्मज्ञः साक्षी यस्त्वनुभूतवाक् ।

प्रमाणमेकोऽपि भवेत्साहसेषु विशेषतः ॥ इति ।

अनुभूता यथार्थत्वेन प्रमितचरा वागस्येत्यनुभूतवाक् ।

कात्यायनः—

(२) अभ्यन्तरस्तु निक्षेपे साक्ष्यमेकोऽपि वाच्यते ।

अर्थिना प्रहितः साक्षी भवेदेकोऽपि याचिते ॥

(१) असाक्षिकोऽपि इति मु० ना० पाठः । (२) अभ्यन्तरस्थनिक्षेपे इति पाठान्तरम् ।



याचित इति निक्षेपविशेषणम् । न्यायतौल्यादन्यत्रापीति वाचस्पतिः ।  
मदनरत्नकारस्तु याचितम् विवाहाद्यर्थं याचितं गृहीतमाभरणादिकं याचि-  
तकमिति यावदित्याह । निक्षेपविशेषणवैयर्थ्यादयाचिते तस्मिन्नभ्य-  
न्तरस्यैकस्यासाक्षित्वप्रसङ्गाद्यवहितान्वयप्रसक्तेश्चोत्तरैव व्याख्या  
प्रख्या । कुण्डलादिपण्यविवादे तन्निर्मातैकोऽपि साक्षीत्याह—

स एव,

संस्कृतं येन यत्पण्यं तत्तैनेव विभावयेत् ।

एक एव प्रमाणं स विवादे तत्र कीर्तितः ॥

इदं च बहूनामसम्भवे सत्यवादिनोद्धृत्योरेकस्य वानुमतिप्रदर्श-  
नार्थं न नियमार्थम् । अदृष्टार्थत्वप्रसङ्गादिति ध्येयम् । उक्तलक्षणसा-  
क्ष्यसम्भवे प्रतिषेधरहितानां साक्ष्यनुकल्पनां सूचयितुमसाक्षिणो-  
ऽपि स्मृतिषूक्ताः । उक्तलक्षणविप्रालाभेऽप्रतिषिद्धानुमत्यै श्राद्धे कति-  
पयप्रतिषेधवत् ।

तत्र नारदः—

असाक्ष्यपि हि शास्त्रेषु दृष्टः पञ्चविधो बुधैः ।

वचनादोषतो भेदात् स्वयमुक्तिर्मृतान्तरः ॥ (व्य० प० १।१५७)

श्रोत्रियाद्यास्तु वचनात् स्तेनाद्या दोषदर्शनात् ।

भेदाद्विप्रतिपत्तिः स्याद्विवादे यत्र साक्षिणाम् ॥ (१)

स्वयमुक्तिरनिर्दिष्टः स्वयमेवैत्य यो वदेत् ।

सूचीत्युक्तः स शास्त्रेषु न स साक्षित्वमर्हति ॥ (व्य० प० १।१६१)

मृतान्तरोऽर्थिनि प्रेते मुमूर्षुश्चावितादृते ॥ (२)

वचनादसाक्षिणः श्रोत्रियाद्यानाह—

स एव,

श्रोत्रियास्तापसा वृद्धा ये च प्रव्रजितादयः ।

असाक्षिणस्ते वचनान्नात्र हेतुरुदाहृतः ॥ इति । (१।५८)

तापसा=वानप्रस्थाः । प्रव्रजितादय इत्यादिशब्देन शङ्केनैकयोगोपात्ताः

पित्रा विवदमानादयो गृह्यन्ते ।

तथाच शङ्कः—

पित्रा विवदमानगुरुकुलवासिपरिव्राजकबानप्रस्था निर्ग्रन्थाश्चासा-  
क्षिणः । इति ।

(१) इदं पद्यं मु० ना० नोपलभ्यते ।

(२) अस्यार्थस्य स्थाने व्य० प० १ श्लो० ९४ अन्यत्र श्राविताद्यस्मात्स्वयमास-  
न्नमृत्युना । इत्यर्थो दृश्यते ।

१५ वी० मि०



## ११४ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

पित्रा विवदमाननिर्ग्रन्थयोर्दोषादप्यसाक्षित्वसम्भवे वचनादप्य-  
साक्षित्वे न विरोधः । दोषादसाक्षिणोऽपि तेनैव दर्शिताः—(१)

स्तेनाः साहसिकाश्चण्डाः कितवा वञ्चकास्तथा ।

असाक्षिणस्ते दुष्टत्वात् तेषु सत्यं न विद्यते ॥ (१।१५९)

चण्डाः=कोपनाः । कितवा=द्यूतकृतः । योगीश्वरस्त्वसाक्षित्वमात्रविवक्षया  
सर्वानेतानेकीकृत्याह—

स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तोन्मत्ताभिः शस्तकाः ।

रङ्गावतारिपाषण्डकूटकृद्विकलेन्द्रियाः ॥

पतिताप्तार्थसम्बन्धिसहायरिपुतस्कराः ।

साहसी दृष्टदोषश्च निर्धूताद्यास्त्वसाक्षिणः ॥ इति । (अ०२२श्लो०७०।७१)

अत्र वृद्धग्रहणं श्रोत्रियादीनां वचनादसाक्षिणां नारदाद्युक्तानामुप-  
लक्षणम् । स्त्रीबालादिग्रहणमन्येषामपि दोषादसाक्षिणां स्मृत्यन्तराभि-  
हितानाम् । आद्यग्रहणाद्भेदादसाक्षिणां स्वयमुक्तेः मृतान्तरस्य च ग्र-  
हणम् । तत्र स्त्रिया असाक्षित्वं स्त्रीकृतव्यवहारातिरिक्ते । “स्त्रीणां सा-  
क्ष्यं स्त्रियः कुर्युः” इति वचनात् । बालोऽप्राप्तव्यवहारः । वृद्धोऽशीतिकाव-  
धिः । मत्तो=मदनीयद्रव्येण । उन्मत्तो=ग्रहाद्याविष्टः । अभिशस्तको=महापातका-  
भिः शस्तः । स्वार्थे कः । रङ्गावतारी=चारणः । पाषण्डिनो=निर्ग्रन्थप्रभृतयः ।  
कूटकृत=कपटलेख्यादिकारी । विकलः=श्रोत्रेन्द्रियादिदोषवान् । पतितो=नि-  
श्चितब्रह्महत्यादिः । आप्तः=सुहृत् । अर्थसम्बन्धी=विप्रतिपद्यमानार्थसम्ब-  
न्धी । सहाय=एककार्यकारी । रिपुः=शत्रुरन्यतरस्य । साहसी=बलावष्टम्भेन  
कार्यकारी । दृष्टदोषो=दृष्टासत्यवचनः । निर्धूतो=बन्धुभिस्त्यक्तः । भेदा-  
दसाक्षित्वं च सङ्ख्यागुणसाम्ये । अन्यथा

द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां वचः ।

गुणिद्वैधं तु यत्र स्यात् ग्राह्या ये गुणवत्तमाः ॥ (या०२।७८)

बहुत्वं परिगृह्णीयात् साक्षिद्वैधे नराधिपः ।

समेषु च गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ (मनु०८।७३)

इति याज्ञवल्क्यमन्वादिवचनविरोधापत्तिः ।

ननु—

साक्षिणां लिखितानां च निर्दिष्टानां च वादिनाम् ।

तेषामेकोऽन्यथा ब्रूते भेदात्सर्वेऽप्यसाक्षिणः ॥

इति कात्यायनेनैकस्यान्यथावादित्वे सर्वेषामेव भेदादसाक्षित्वमुक्तम् ।  
तद्विरोध इति चेत्, न । त्रयाणां साक्षिणामेकस्यान्यथावादे द्वितीय-



साक्षिणिरूपणे स्वयमुक्तिमृतान्तरादेरसाक्षित्वनिरूपणम् । ११२

स्य तत्तुल्यस्य सत्प्रतिपक्षितत्वाच्चतृतीयस्य चैकतया तत्र साक्षितो न निर्णय इत्यत्र कात्यायनतात्पर्यात् । सत्प्रतिपक्षितावशिष्टानां त्वनेकत्वे तत एव निर्णय इत्यत्र च याज्ञवल्क्यतात्पर्यात् । मूलभूतन्यायविरोधेऽनयोर्वचनयोरेवमवश्यं सङ्कोच्यत्वादिति वाचस्पतिः । पञ्चषेष्वापि साक्षिष्वधिकगुणस्यैकस्याप्यन्यथावादित्वे तद्विरुद्धार्थाभिधायिनां सर्वेषामन्येषामसाक्षित्वम् । अधिकगुणस्याप्येकस्य बहुवाक्यविरुद्धाभिधानादसाक्षित्वमिति सर्वेऽपि ते न साक्षिण इति न मन्वादिविरोध इति मदनरत्नकारः ।

वयं तु गुणवत्त्वस्यैव 'शतमप्यन्धानां न पश्यति' 'एकेनापि बहूनां प्रतिबन्धाच्च' इत्यादिन्यायेन प्राधान्यात् गुणवतः साम्ये वादिनिर्दिष्टानामेकस्याप्यन्यथावादित्वे सङ्ख्याधिक्येऽपि गुणवत्तत्वाभावे सर्वेष्वसाक्षित्वम् । "द्वैधे बहूनाम्" इत्यत्रापि विनिगमकान्तराभावे बहुत्वमेव विनिगमकमत एव सङ्ख्यानपेक्षमेव गुणवत्तमत्वमात्रं ग्राह्यवचने हेतुमाहेति ब्रूमः । स्वयमुक्तेरसाक्षित्वमपि विवृतं कात्यायनेन,  
यः साक्षी नैव निर्दिष्टो नाहूतो नैव देशितः ।

ब्रूयामिष्येति तथ्यं वा दण्ड्यः सोऽपि नराधमः ॥ इति ।

अयमत्र साक्षीति ज्ञानवानान्तरोऽर्थिप्रत्यर्थिनोरन्यतरः स मृतो यस्येति मृतान्तरः । तस्यासाक्षित्वमपि सहेतुकं विवृतं नारदेन—

योऽर्थस्तु श्रावितव्यः स्यात्तस्मिन्नसति चार्थिनि ।

क तद्वदतु साक्षित्वमित्यसाक्षी मृतान्तरः ॥ इति । (११६२)

येनार्थिना प्रत्यर्थिना वा योऽर्थः स्वीयः श्रावितव्यः स्यात् श्रावणीयत्वेनाभिमतो भवेत् तस्मिन् अर्थिप्रत्यर्थिनोरन्यतरस्मिन् असति मृते प्रोषिते वाऽभिमतार्थे चानिवेदिते स साक्षित्वं क कस्मिन्नर्थे वदतु कस्य वा कृते वदत्वित्यर्थः । सामान्यतो य आवयोः कश्चिद्व्यवहारसम्बन्धोऽस्ति तत्र त्वया साक्षिणा भाव्यमित्येतावन्मात्रमुक्तं, विशिष्य च व्यवहारविषयो न तस्मै श्रावितः श्रावयिता च नास्ति स पृष्ठोऽपि विशिष्य विषयाज्ञानादसाक्षीति यावत् । इदमेवाभिप्रेत्योक्तम्—“मुमूर्षुश्राविताद्धते” इति । मुमूर्षुग्रहणमश्रावणप्रयोजकाभावपरम् ।

तथा च स एव—

श्रावितश्चातुरेणापि यस्त्वर्थो धर्मसंहितः ।

मृतेऽपि तत्र साक्षी स षट्सु चान्वाहितादिषु ॥ (११६)

इत्याह । अत्र श्रोत्रियादयो न साक्षिणः कार्यास्तेषां रागादिशून्यानां सत्यवादित्वातिशयेऽपि तपःस्वाध्यायाग्निहोत्रादिव्यासङ्गेन श्रावितार्थः

## ६१६ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणम्०

विस्मरणसम्भवात् अतिपूज्यानां धर्माधिकरणप्रवेशाह्वानाद्यनौचित्याच्चे-  
त्यर्थः । अकृतास्तु तत्त्वं जानन्तो भवन्त्येव साक्षिणः । अत एवोक्तम्-  
“उभौ तु श्रोत्रियौ ब्राह्मौ” इत्यादि । अन्यथा सर्वथा साक्षित्वनिषेधे  
तद्विरोधः स्यात् । तथा च नात्र हेतुः असत्यवादित्वप्रयोजको हेतुः स्ते-  
नत्वादिर्नोदाहृत इत्यर्थः । वचनादित्यस्यापि साक्षित्वकरणनिषेध-  
कवचनादित्यर्थः ।

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्वधः शुच्योऽपि न स्त्रियः ।

स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वाच्च दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः ॥ (अ०८३श्लो०७९)

इति मनुः । अलुब्ध एकोऽपि पुमान् साक्षी भवति । बह्व्यः शुच्यो लोभादि-  
दोषरहिता अपि स्त्रियः साक्षिण्यो न भवन्ति । तत्र हेतुः स्त्रीबुद्धेरिति । एको  
लुब्धस्त्वसाक्षीति मेधातिथिनान्याभिमतत्वेनेमं पाठमभिप्रेत्य-“अन्ये त्व-  
कारप्रश्लेषेणालुब्धोऽप्येको न साक्षी किं पुनर्लुब्ध इत्येवं व्याचक्षते,  
तदा द्वयोरभ्यनुज्ञानं भवति स्त्रियस्त्वलुब्धा बह्व्योऽपि न साक्ष्यार्हाः  
किमुताशुचय” इति भाणितम् । तत्र अन्ये त्वित्यस्वरसबीजमेकस्य  
प्रागेव निरस्तत्वात् स्त्रीसाक्ष्यपर्युदासायानुवादे तु यथोक्तपाठेऽप्युप-  
पत्तेस्तत्र चैकस्यालुब्धस्य पुंस्त्वेन प्रतिप्रसवपूर्वकं स्त्रीणां सर्वथा  
निषेधपरत्वे सन्दर्भसामञ्जस्यमिति । अलुब्ध इत्यकारप्रश्लेषं विनैव  
पूर्वपाठ एव लुब्धश्चेदेको न साक्षी अलुब्धस्त्वेकोऽपि पुमान् साक्षीति  
जीमूतवाहनेनैवं व्याख्यातम् । तत्र लुब्धानां बहूनामप्यसाक्षित्वे एकपद-  
वैयर्थ्यमिति व्यवहारतत्त्वे दूषणमुक्तम् । तदप्युत्तरवाक्यशेषत्वादस्य न  
सम्यगिति द्रष्टव्यम् । शुच्य इति ङीप् छान्दसः । गुणवचनादुकारान्तादेव  
“वोतो गुणवचनात्” । (४।१।४४) इति तद्विधानात् “कृदिकारादक्तिन”  
इति वा समर्थनीयम् । अन्येऽपि=स्त्रीव्यतिरिक्ता अपि रागद्वेषादिदोषै-  
र्ये वृता=आक्रान्तचित्तास्तेऽपि न साक्षिणः । यद्यपि केचन दुष्टा असा-  
क्षितया पृथगप्युक्तास्तथापि सर्वेषां पृष्ठाकोटेन वक्तुमशक्यतयाऽनु-  
क्ततत्सङ्ग्रहार्थमिदमुक्तम् । अत एव मेधातिथिः-“सामान्यविशेषाभिधानं  
हि सर्वे ग्रन्थकारा अमन्यन्त” इत्याह ।

मनुरेव—

नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ।

न दृष्टदोषाः कर्त्तव्या न व्याध्यार्त्ता न दुषिताः ॥

न साक्षी नृपतिः कार्य्यो न कारुककुशीलवौ ।

न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न सङ्ग्रेभ्यो विनिर्गतः ।

अध्यधीनो न चक्रव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ।



न वृद्धो न शिशुर्नको नासो न विकलेन्द्रियः ॥  
 नात्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ।  
 न श्रमात्तो न कामात्तो न क्रुद्धो नातितस्करः ॥ इति ।

( अ०७श्लो०६४।६५।६६।६७ )

अत्र सर्वैर्विशेषणैरसत्यसम्भाषणाविस्मरणादिकमसाक्ष्यनिमित्त-  
 मुपलक्ष्यते । अत एव वृद्धविकलेन्द्रियविकर्मकृत्तस्करादीनां गोवृ-  
 षण्यायेन पुनरुपादानम् । अत्र बहवः शब्दाः स्पष्टार्थाः । अन्ये मेधातिथ्य-  
 नुसारेण विवियन्ते । अर्थसम्बन्धिनः=उत्तमर्णाधमर्णाद्याः । उत्तमर्णो ह्यध-  
 मर्णवचनेन पराजीयमानस्तदानामिव रोषाविष्टोऽधमर्णादृणं प्रत्यादातुं  
 प्रयतत इति तच्चित्तानुवृत्तिरधमर्णस्य तदनुगुणकौटसाक्ष्यहेतुत्वेन  
 सम्भाव्यते । उत्तमर्णो निर्धनोऽधमर्णे स्वसाक्षितया धनं प्राप्य स्वस्मै  
 तदर्पयिष्यतीति बुद्ध्या तदनुगुणवादी सम्भाव्यते । तथा अर्थः=प्रयो-  
 जनम् । तत्सम्बन्धिनोर्वादिप्रतिवादिनोरन्यतरस्माद्येषां स्वप्रयोजनं सि-  
 साधयिषितं तेऽप्युपकारगन्धाश्च साक्ष्यार्हा इत्यादि सर्वत्र कौटसाक्ष्य-  
 सम्भावनोन्नेया । दृष्टदोषा=अन्यत्र कृतकौटसाक्ष्याः । व्याघ्यार्त्ता=वचनवि-  
 संवादापादकव्याधिपीडावन्तः । दूषिता=अभिशास्ताः । नृपतेरसाक्षित्वं  
 कृताभिप्रायेणातो न प्राक्तननारदोक्तिविरोधः । लिङ्गस्थोऽपत्यादिः ।  
 सङ्ग्रेभ्यो विनिर्गतः=परित्यक्तः । पित्रादिगुरुजनसंसर्गात् । वृद्धानुपसेवना-  
 दस्यासत्यसम्भावना । अध्यधीनो=बन्धकीकृतः । तस्य तदाज्ञावशवर्त्ति-  
 त्वात् । वक्तव्यो=निन्दास्पदम् । विकर्मकृत्=अधर्माभीरुः । वृद्धविकले-  
 न्द्रिययोर्वाङ्मकस्वभावेहेतुकेन्द्रियवैकल्येन भेदः । आर्त्ताः=शोकेन ।

नारदोऽपि—

दासनैकृतिकाश्रद्धवृद्धस्त्रीबालचाक्रिकाः । ( व्य०प०१ )

मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्त्तकितवग्रामयाजकाः ॥ ( १७८ )

महापथिकसामुद्रवणिक्प्रव्रजितातुराः ।

व्यङ्गैकश्रोत्रियाचारहीनङ्गविकुशीलवाः ॥ ( १७९ )

नास्तिकवात्यदारान्प्रित्यागिनोऽयाज्ययाजकाः ।

एकस्थालीसहायारिचरज्ञातिसनाभयः ॥ ( १८० )

प्राग्दृष्टदोषशैलूषविषजीव्यहितुण्डिकाः ।

गरदाग्निदकीनाशशूद्रापुत्रोपपातिताः ॥ ( १८१ )

क्लान्तसाहसिकाश्रान्तनिर्धूतान्त्यावसायिनः ।

भिन्नवृत्तासमावृत्तजडतैलिकमूलिकाः । ( १८२ )

भूताविष्टनृपद्विष्टवर्षनक्षत्रसूचकाः ।

## ११८ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणम्०

अघशस्यात्मविक्रेतृहीनाङ्गभगवृत्तयः ॥ (१८३)  
 कुनखिदयावदच्छिन्नामित्रधुकृशठशौण्डिकाः ।  
 ऐन्द्रजालिकलुब्धोऽग्रेणीगणविरोधिनः ॥ (१८४)  
 बधकश्चित्रकृत् शङ्खः पतितः कूटकारकः ।  
 कुहकः प्रत्यवसितस्तस्करो राजपूरुषः ॥ (१८५)  
 मनुष्यपशुमांसास्थिमधुक्षीराम्बुसर्पिषाम् ।  
 विक्रेता ब्राह्मणश्चैव द्विजो वार्धुषिकश्च यः । (१८६)  
 च्युतः स्वधर्मात्कुलिकः सूचको हीनसेवकः ।  
 पित्रा विवदमानश्च भेदकृच्चेत्यसाक्षिणः ॥ (१८७)  
 श्रेण्यादिषु तु वर्गेषु कश्चिन्नेहेष्यतामियात् ।  
 तस्य तेभ्यो न साक्ष्यं स्याद्वेष्टारः सर्व एव ते ॥ (१५६)

नैकृतिकः=परापकारशीलः । चाक्रिकः=तैलिकः । प्रमत्तः=सदाऽनव-  
 हितः । महापथिको=महापथगामी । सामुद्रवणिकः=वाहित्रवाही । एकश्रोत्रियो=  
 द्वयोरनुमतः । एकः श्रोत्रिय इति पृथग्वा । प्रपञ्चितं च प्रागेवैतत् । अ-  
 परार्केण तु युग्मैकेति पठित्वा युग्मौ द्वाविति व्याख्यातम् । एकस्थालीस-  
 हाय=एकपाकभोजी । सहायः=अन्यतरसाहाय्यकारीति मिश्रचण्डेश्वरौ । म-  
 दनरत्नाकरस्तु एकस्थाली सहाय इति विशेषणद्वयं पृथक्कृत्यस्थाली स्था-  
 ल्यधिकरणकः पाको लक्ष्यते स एको यस्येत्येकस्थालीति व्याचख्यौ ।  
 समासान्तविधेरनित्यत्वादेकस्थालीत्यत्र “नद्युतश्च” (५।४।१५३) इति  
 न कप् । अर्द्धपिप्पलीत्यादिवन्न ह्रस्व इति च समादधे । अरिचरः=भूतपु-  
 र्वः शत्रुः । “भूतपूर्वं चरत्” । (५।३।५३) कल्पतरौ त्वारिचर इति पठित्वा  
 शस्त्रधर इति व्याख्यातम् । ज्ञातयः=सगोत्राः । सनाभयो=मातुलतत्सुतमा-  
 तृष्वस्त्रीयादयः । शैलूषः=स्त्रीणां नर्तयिता । कुशीलवस्तु रङ्गोपजीवी नट  
 इति भेदः । विषजीवी=विषक्रयजीवीति मदनरत्ने । विषवैद्य इति  
 रत्नाकरे । अहितुण्डिकः=सर्पक्रीडोपजीवी व्यालग्राही । कीनाशः=कर्कशः  
 क्षुद्रो वा । कृपण इति तु मदनरत्ने । उपपातितः=उपपातकीति कल्पतरुः ।  
 मदनरत्ने तूपपातक इति पठितम् । उप समीपं पातकं यस्येति विग्रह्य  
 पातकयुक्त इति व्याख्यातं च । क्लान्तो=ऽतिस्त्रिन्नः । अश्रान्तोऽनवरतक-  
 र्मकारीति मदनरत्ने । अशान्त इति पठित्वाऽयोग्यकर्मकारीति रत्नाकरे ।  
 निर्दूतो=बान्धवैस्त्यक्त इति मदनरत्ने । ग्रामराजकुलश्रेण्यादिभिर्निःसारित  
 इति रत्नाकरे । लोकभयशून्य इति भवदेवः । मूलं=विप्रलम्भस्तत्कारीति  
 कल्पतरुः । “मूलकर्म तु कार्मणम्” इत्यमरकोशात्तत्कारीति तु युक्तम् ।  
 अपरार्केण तु पौषिक इति पठित्वा पौषिकः=पूपादिविक्रयीति व्याकृतम् ।



## साक्षिनिरूपणे भृत्यमातृष्वसुसुतादेरसाक्षित्वम् । ११९

वर्षसूचको=वृष्टिशकुनवेदी । नक्षत्रसूचको=ज्यौतिषिकः । अघशंसी=परकीय-  
पापप्रकाशकः । हीनाङ्ग=उचितपरिमाणातिन्यूनङ्गः । व्यङ्गस्तु छिन्ना-  
ङ्गुल्यादिरिति भेदः । भगवृत्तिः=भार्यादास्यादिसम्भोगशुल्कोपजीवी ।  
शङ्को=वृषभनर्त्तनजीवीति मदनरत्नरत्नाकरयोः । कुहको=दाम्भिकः । प्रत्यवसि-  
तः=प्रव्रज्याविद्युतः । कुलिको=राज्ञा व्यवहारपरिच्छेदकतया नियुक्तः ।  
अस्य च साक्षित्वकरणे निषेधो विधिस्त्वकृतसाक्ष्य इति कल्पतरुः ।  
मदनरत्ने तु कुलं ब्राह्मणादिगणस्तदधिकारी कुलिक इति व्याख्यातम् ।  
सूचको=राज्ञा परदोषान्वेषणपूर्वकं स्वस्मै तन्निवेदने नियुक्तः । भेदकृत्=  
मित्रादिप्रीतिभङ्गकर्त्ता । श्रेण्यादिष्वित्यस्यायमर्थः । येषु श्रेण्यादिषु य-  
स्यैकोऽपि द्वेष्यतां शत्रुतामाप्तस्तदीयविवादे तच्छ्रेण्यादिनिविष्टाः सर्व-  
एव न साक्षिणः । तत्र हेतुर्द्वैतारः सर्व एव त इति । तच्छ्रेण्यन्तर्गतै-  
कद्वेष्यनुरोधकृतवैरनिर्यातनार्थमन्यथावादित्वसम्भवात् ।

अत एव नारदः—

बालोऽज्ञानादसत्यात् स्त्री पापाभ्यासाच्च कूटकृत् ।

विब्रूयाद्धान्धवः स्नेहाद्वैरनिर्यातनादरिः॥ इति॥ (व्य० प० १।१९१)

कात्यायनः—

तद्वृत्तिजीविनो ये च तत्सेवाहितकारिणः ।

तद्वन्धुसुहृदो भृत्या आप्तास्ते तु न साक्षिणः ।

मातृष्वसुः सुताश्चैव पितृष्वसुसुतास्तथा ।

मातुलस्य सुताश्चैव सोदर्यसुतमातुलाः ॥

एते सनाभयः प्रोक्ताः साक्ष्यं तेषु न योजयेत् ।

कुल्याः सम्बन्धिनश्चैव विवाहो भागिनीपातिः ॥

पिता बन्धुः पितृव्यश्च श्वशुरो गुरवस्तथा ॥

तथा बृहस्पतिः—

मातुः पिता पितृव्यश्च भार्याया भ्रातृमातुलौ ।

भ्राता सखा च जामाता सर्ववादेष्वसाक्षिणः ॥

परस्त्रीपानसक्तश्च कितवाः सर्वदुषकाः ।

उन्मत्तार्त्ताः साहसिका नास्तिकाश्च न साक्षिणः ॥ इति ।

अत्र मातृष्वस्त्रादिशब्दानां सम्बन्धिशब्दत्वादर्थिनोरन्यतरस्य  
एतादृशसम्बन्धिनो न साक्षिणः सम्बन्धिनि स्नेहादन्यत्र वैरसम्भ-  
वादिति ध्येयम् ।

शङ्खलिखितौ—

शुल्कगुलमाधिकृतौ दूतो वेष्टिताशिराः स्त्रियो गुरुकुलवासिनः

## १२० वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

परिवाजकवानप्रस्थनिग्रन्थाः शङ्खव्यालग्राहिणः । इति ।

अत्राऽसाक्षिण इति प्रकृतम् । शुल्काधिकृतः=शुल्कग्रहणस्थानाधि-  
कारी । गुल्मः=स्वस्थाननिवेशितः पदातिसमूहस्तदधिकृतः । वेष्टितशिराः=  
उद्धतवेषो मूर्द्धव्याध्यभिभूतो वा । इतरे प्रसिद्धा व्याख्याततराश्च ।  
अनेन प्रपञ्चेन लोभादिकमसाक्षित्वनिमित्तमेव व्यक्तीकृतम् ।

यथाह मनुः—

लोभान्मोहाद्भयात्क्रोधान्मैत्र्यात्कामात्तथैव च ।

अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्षी वितथ उच्यते ॥ इति । (अ०८श्लो०११८)

असाक्षित्वेनोक्तानां कचित्प्रतिप्रसवमाह—

नारदः,

आसाक्षिणो ये निर्दिष्टा दासेनैकृतिकादयः ।

कार्यगौरवमासाद्य भवेयुस्तेऽपि साक्षिणः ॥ (व्य०प०१।११८)

स्त्रियाप्यसम्भवे कार्यं बालेन स्थाविरेण वा ।

शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा ॥ (म०८।७०)

मनुरप्येवमेव द्वितीयं वचनं पठितवान् । इदं चासत्यवादित्वानिश्च-  
याभावे साक्ष्यन्तरस्य तद्गुणविशिष्टस्यासम्भवे बोध्यम् ।

स्त्रीसङ्ग्रहणादिषु योगेश्वरः—

सर्वः साक्षी सङ्ग्रहणे चौर्यपारुष्यसाहसे । (२।७२)

अत्र च—

मनुष्यमारणं चौर्यं परदारामिमर्शनम् ।

पारुष्यमुभयं चेति साहसं स्याच्चतुर्विधम् ॥

इति वचनात् स्त्रीसङ्ग्रहादीनां सत्यपि साहसत्वे बलानवष्टम्भेन  
क्रि।माणानां तेषामसाहसत्वात् तत्सङ्ग्रहार्थं ततः पृथगुपादानम् ।

उशना—

दासोऽन्धो बाधिरः कुष्ठी स्त्री बालस्थविरादयः ।

पतेऽप्यनभिसम्बन्धाः साहसे साक्षिणो मताः ॥

अनभिसम्बन्धाः=विवादगोचरीभूतार्थासम्बन्धिनः । अपक्षपातिन  
इति मदनरत्ने ।

मनुनारदौ—

साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु च ।

वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥

(मनु०८।७२ना०व्य०१।१८९)



## साक्षिनिरूपणे साक्षिदूषणे न साक्ष्यन्तरग्रहणम् । १२१

मनुः—

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्व्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ।  
अन्तर्देशमन्यरण्ये वा शरीरस्यापि वात्यये ॥ (८।६९)

अनुभावी=तदर्थानुभवशीलः । यत्तु—

ऋणादिषु परीक्षेत साक्षिणः स्थिरकर्मसु ।

साहसात्ययिके चापि परीक्षा कुत्रचित्समृता ॥

इति परीक्षाभिधानम् । तदस्पष्टासत्यवादिदोषविषयम् । अत एव  
“कुत्रचित्” इत्युक्तम् । अस्मिंश्च प्रघट्टके प्रकटदोषानभिषङ्गे काचित्क-  
विसंवादादिदोषपुरस्कारेण साहसादिसाक्षिता न कक्षीकरणीयेत्यत्र  
तात्पर्यम् । अत एव विज्ञानयोगिनोक्तम्—“दोषादसाक्षिणो भेदादसाक्षिणः  
स्वयमुक्तिश्चात्रापि न साक्षिणो भवन्ति सत्याभावादिति हेतोरनपगमा-  
त्” इति । अपराकोऽपि—“सर्वः साक्षी न तु गुणवानेवेत्यर्थः । दोषवांस्तत्रापि  
परिहरणीय एव । वक्तृदोषाणां वचनाप्रामाण्यहेतुत्वात्” इत्याह । तस्या-  
पि सर्वदोषाभावे न तात्पर्यम् । प्रतिप्रसवानुपपत्तेः । यत्तु केनचिदुक्तं  
साक्षिगुणदोषप्रतिप्रसवा यथाश्रुता एव ग्राह्या अन्यथा तत्र तत्र तत्त-  
द्विशेषणोपादानमनर्थकमुपलक्षणं वा प्रसज्येतेति । तद्वालिष्यम् । न्या-  
यमूलकत्वात्तेषां तदविरोधेनैव नेयत्वात् । अत एव न्यूनाधिकविशेष-  
णोपादानमविरुद्धम् । अदृष्टार्थत्वे ताद्विरोधो दुष्परिहरः स्यात् । एव-  
मन्यतरेण साक्षिषूपन्यस्तेष्वसत्तु तद्दोषेष्वपरस्योपन्यस्तेऽसदुद्-  
भावेन दण्ड इत्याह—

बृहस्पतिः—

साक्षिणो हि समुद्दिष्टान् सत्स्वदोषेषु दूषयेत् ।

अदुष्टान् दूषयन्वादी तत्समं दण्डमर्हति ॥

तत्समं=विवादविषयसममिति बहवः । तदर्थविषयविवादेष्वव्याप-  
कमिति तत्समं=कूटसाक्षिदण्डसममिति व्याख्येयम् । साक्षिदूषणेऽन्य-  
तरेणोद्भाविते प्रत्यक्षेषु वादयादिदूषणेषु तेनैव निर्णयः । अयोग्येषु  
लोकप्रसिद्धादिना न साक्ष्यन्तरेण । अनवस्थापत्तेः ।

तथा च व्यासः—

सभासदां प्रसिद्धं यल्लोकसिद्धमथापि वा ।

साक्षिणां दूषणं ग्राह्यमसाध्यं दोषवर्जनात् ॥

अन्यैस्तु साक्षिभिः साध्ये दूषणे पूर्वसाक्षिणाम् ।

अनवस्था भवेद्दोषस्तेषामप्यन्यसम्भवात् ॥ इति ।

असाध्यं=लोकादिसिद्धत्वात्साधनानर्हम् । यत् इति हेतुगर्भमिति । दोष-

## १२२ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

वर्जनात्=अनवस्थादोषाभावादित्यर्थः । यद्यपि लोकसभ्यप्रसिद्धिरपि साक्षिप्रसिद्धिरेव पर्यवस्यति । तथापि तत्र साक्षित्वोद्भावनानपेक्षत्वान्नानवस्था । अत एवातिगूढवादिप्रतिवादिमात्रविदितदूषणसाधनमन्यतरेणालौकिकप्रमाणेन क्रियमाणं न दुष्यतीत्यभिप्रायः । न च साक्षिदूषणविभावनं व्यवहारान्तरत्वादयुक्तमिति वाच्यम् । प्रकृतोपयोगित्वेनार्थान्तरत्वानापत्तेः । कात्यायनः स्फुटमेतदेवाह—

प्रत्यर्थिनार्थिना चापि साक्षिदूषणसाधने ।

प्रस्तुतार्थोपयोगित्वाद्यवहारान्तरं न च ॥ इति ।

अविद्यमानदोषोद्भावेऽर्थिप्रत्यर्थिनेवैकलिपकौ हानिदण्डौ । अन्यतराज्ञाता राज्ञा सभ्यैरेव वा ज्ञाताः साक्षिदोषास्तदा तैरेव साक्षित्वेनोपादेया इति—

स एवाह,

नातथ्येन प्रमाणं तु दोषेणैव तु दूषयेत् ।

मिथ्याभियोगे दण्ड्यः स्यात्साध्यार्थादपि हनियते ॥

प्रमाणस्य हि ये दोषा वक्तव्यास्ते विवादिना ।

गूढास्तु प्रकटाः सभ्यैः काले शास्त्रप्रदर्शनात् ॥ इति ।

ये गूढाः=प्रत्यर्थिना न ज्ञानास्ते काले=साक्षिवादात्पूर्वकाले कार्य्ये इति शेषः । शास्त्रप्रदर्शनात्=दुष्टानां शास्त्रे साक्षित्वेनानुपादेत्वदर्शनात् । छलं निरस्येति च छलनिरासस्यावश्यकत्वादिति तात्पर्य्यार्थः । साक्षिभिरुक्ते साक्ष्ये दोषोद्भावनं तेषां न कार्य्यमित्याह—

बृहस्पतिः,

लेख्यदोषास्तु ये केचित्साक्षिणां चैव ये स्मृताः ।

वादकाले तु वक्तव्याः पश्चादुक्तास्त दूषयेत् ॥

न दूषयेत्=दोषत्वेन नोपादद्यात्ससभ्यो राजेत्यर्थात् । पश्चादुक्तौ

दण्डमप्याह—

कात्यायनः,

उक्तेऽर्थे साक्षिणो यस्तु दूषयेत्प्रागदूषितान् ।

न च तत्कारणं ब्रूयात् प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥

तच्च दण्डनिरूपणप्रस्तावे विवेचयिष्यामः । अन्यतरोद्भाविता दोषाः स्वीकार्यास्तैरेव यः साक्ष्युद्भावयितानेन वा परिहरणीया इत्याहतुः व्यासबृहस्पती—

साक्षिदोषाः प्रवक्तव्याः संसदि प्रतिवादिना ।

पत्रेऽभिलिखितान्सर्वान् वाच्याः प्रत्युत्तरं तु ते ॥



लेख्यं वा साक्षिणो वापि विवादे यस्य दूषिताः ।

तस्य कार्यं न सिध्येत यावत्तत्र विशोधयेत् ॥

पत्रेऽभिलिखितान् सर्वान् दोषान् प्रति साक्षिण उत्तरं=परिहारं वाच्याः वाचनीया इति पूर्ववचनार्थः । यस्य साक्षिणो लेख्यं वा यदुद्भावितं परेण दूषितं स यावत्तत्र विशोधयेत् तद्दोषरहितं न कुर्यात्तावत्तत्र प्रमाणाभास-  
त्वसंभावनया तेन प्रमाणेन तस्य तत्कार्यं न सिद्ध्येदिति द्वितीयवच-  
नार्थः । इदं च सभाक्षोभादिना साक्षिणां स्वदोषपरिहाराक्षमतायां  
द्रष्टव्यम् । तदिति [तच्च] लेख्यं च [ते च] साक्षिणश्चेति द्वन्द्वे “नपुंसक-  
मनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्” ( १।२।६६ ) इति नपुंसकैकशेषै-  
कवद्भावौ ।

अन्यतरः साक्षिदोषमुद्भाव्य यदि तं भावयितुं न शक्नोति तदा स  
दण्ड्यः । साधिते तु दोषे त्याज्यः । अथर्यपि प्रमाणान्तरमनुपन्यस्यन्  
पराजीयत इत्येतदाह—

व्यासः,

असाधयन्दमं दाप्यो दूषणं साक्षिणां स्फुटम् ।

भाविता साक्षिणो वर्ज्याः साक्षिधर्मनिराकृताः ॥

जितः स विनयं दाप्यः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।

यदि वादी निराकाङ्क्षः साक्षिसम्प्रेषवस्थितः ॥ इति ।

विनयं=दण्डम् । स=वादी । मदनरत्ने तु सविनयं=विनयः शिक्षा तत्साहितं  
यथा तथा दाप्यो विवादविषयीभूतधनमिति शेष इति व्याख्यातम् ।  
तत् जित इत्यनेनैव साधितधनदानस्यार्थसिद्धत्वेन निरर्थकाध्याहा-  
रदोषापत्तेः क्लिष्टत्वाच्चोपेक्ष्यम् ।

यस्तु विवादविषयीभूतार्थानभिज्ञानं विपरीताभिज्ञान्वा भयलोभा-  
दिप्रदर्शनेन स्वानुकूलं वादयति तस्य दण्डमाह—

कात्यायनः,

येन कार्यस्य लोभेन निर्दिष्टाः कूटसाक्षिणः ।

गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुर्यान्निर्विषयं ततः ॥ इति ।

सर्वस्वमिति गुरुलघ्वपराधानुसारेण दण्डतारतम्योपलक्षणम् ।  
निर्विषयं=विवादविषयीभूतार्थशून्यम् । ततः=कूटसाक्ष्यकरणात् । साक्षि-  
दोषानुद्भावेनेऽपि ससम्भ्येन सभापतिनैवैते परीक्ष्योपादेयाः ।

तथाच कात्यायनः—

उपस्थितान् परीक्षेत साक्षिणो नृपतिः स्वयम् ।

## १२४ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणम्०

बृहस्पतिरपि—

उपस्थिताः परीक्षयाः स्युः स्वरवर्णोक्त्यादिभिः ॥ इति ।

स्वरवर्णोक्त्यानि मनुयोगीश्वरोक्तानि हीननिरूपणे विवृतानि ।

नारदोऽप्याह—

यस्त्वात्मदोषदुष्टत्वादस्वस्थ इव लक्ष्यते । ( व्य०प०१ )

स्थानात् स्थानान्तरं गच्छेदेकैकं चानुधावति ॥ ( १९३ )

काशत्यकस्माच्च भृशमभीक्ष्णं निःश्वसित्यपि ।

विलिखत्यवनीं पद्भ्यां बाहू वासश्च धूतयेत् ॥ ( १९४ )

भिद्यते मुखवर्णोऽस्य ललाटं स्विद्यते तथा ।

शोषमागच्छतश्चोष्ठावूर्ध्वं तिर्यङ्निरीक्षते ॥ ( १९५ )

त्वरमाण इवाबद्धमपृष्ठो बहु भाषते ।

कूटसाक्षी स विज्ञेयस्तं पापं विनयेद्भृशम् ॥ ( १९६ )

अबद्धम्=असम्बद्धम् । विनयेत्=शिक्षयेद्यथा कौटसाक्ष्याद्विभेती-  
त्यर्थः । न तु दण्डयेदित्यर्थः । प्राकृतिकवकारिकविकारविवेकस्य  
दुःशकत्वात् । सम्भावनामात्रेण च दण्डनस्यान्याय्यत्वादिति युक्तम् ।  
मदनरत्ने त्वाविद्धमिति पाठित्वा आकुलमिति व्याख्यातम् ।

शङ्कलिखितावपि—

मन्त्रिभिः शास्त्रसामर्थ्यात् दुष्टलक्षणं ग्राह्यम् । तिर्यक्प्रेक्षते सम-  
न्तादेवावलोकयति अकस्मान्मूत्रं पुरीषं विसृजति देशादेशं गच्छति-  
पाणिना पाणिं पीडयति नखान्निकृन्तति मुखमस्य विवर्णतामेति प्र-  
स्विद्यति चास्य ललाटं न चक्षुर्न च वाचं प्रतिपूजयत्यकस्माद्दाति  
प्रशंसति पुनः पुनरन्यमपवदति बहिर्निरीक्षते शस्त्रं परामृशति शिरः  
प्रक्रमयत्योष्ठौ निर्भुजति सृक्किणी परिलेदि अतिविस्मितः कर्मस्व-  
महत्स्वपि भुवौ सहरति तूष्णीं ध्यायति पूर्वोत्तरविरुद्धं व्याहरति  
एवमादिदुष्टलक्षणं कुड्स्य च स्वामिनोऽन्यत्र प्रकृतिशीलात् ॥ इति ।

अकस्मादिति तूष्णीमिति च यथायोगमनेकत्र सम्बन्धनीम् । अन्यत्र प्रकृ-  
तिशीलादिति । प्रकृत्या स्वभावात् शीलं तिर्यक्प्रेक्षणादिधर्म्मो यस्य स  
तथोक्तस्ततोऽन्यत्रैतानि दुष्टकुड्सलक्षणानि । एतेन अवान्तरबैलक्षण्य-  
स्य दुर्ज्ञेयत्वादत्यवधानेन परीक्ष्य वस्तुतत्त्वानुसरणं करणीयमिति  
सूचितम् ।

एवं गुणवत्तया दोषाभाववत्तया च परीक्षितान् साक्षिणो विवा-  
दास्पदीभूतमर्थं पृच्छेदित्याह—



कात्यायनः,

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेद्वनं द्विजान् ।  
उदङ्मुखान् प्राङ्मुखान् वा पूर्वाङ्गे वा शुचिः शुचीन् ॥  
सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ।  
प्राङ्गविवकोऽनुयुञ्जीत विधिनानेन सान्त्वयन् ॥  
यद्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिंश्चेष्टितं मिथः ।  
तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥

अर्थिप्रत्यर्थिसन्निधिवद्वाश्वादिगोचराविवादेषु केषु चित्तत्सा-  
न्निध्यमपेक्षितव्यमित्यप्याह—

स एव,

अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्ये साध्यार्थस्य च सन्निधौ ।  
प्रत्यक्षं वादयेत्साक्ष्यं न परोक्षे कथञ्चन ॥  
अर्थस्योपरि कर्त्तव्यं तयोरपि विना क्वचित् ।  
चतुष्पादेषु धर्मोऽयं द्विपादस्थावरेषु च ॥  
तौल्यं गणिममेयानामभावेऽपि हि वादयेत् ।  
क्रियाकारेषु सर्वेषु साक्षित्वं न त्वतोऽन्यथा ॥

तयोः=वादिनोर्विनापीति सम्बन्धमात्रविवक्षया षष्ठी । अपिशब्दात्  
कैमुतिकन्यायेन तदुभयसन्निधाने न तात्पर्यम् । किन्तु साध्यार्थसा-  
न्निध्यावश्यकतायाम् । यदुभयासान्निधिः प्रत्यर्थ्यसान्निध्यानुमत्यर्थः ।  
तेन कथञ्चित्प्रत्यर्थ्यसन्निधानेऽपि साक्षिप्रश्ने न दोषः । कचिदित्यस्यैव  
विवरणं चतुष्पादेष्वित्यादि । तौल्यम्=तौलनार्हं सुवर्णादि । गणिमम्=गण-  
नार्हं वराटकादि मेयं=मानार्हं गोधूमादि । अभावेऽपि=साध्यार्थसान्निध्या-  
भावेऽपि । क्रियाकारा व्यवहारास्तेषु ।

बधरूपविवादपदे साक्षिणः शिवलिङ्गप्रतिमादिसन्निधाने प्रष्टव्या  
इत्यप्याह—

स एव,

बधे च प्राणिनां साक्ष्यं वादयेच्छिवसन्निधौ ।  
तदभावे तु चिह्नस्य नान्यथैव प्रवादयेत् ॥

चिह्नस्य=बधचिह्नस्याभियोज्यसम्बन्धिनोऽभावे तत्=साक्ष्यं वादयेत् ।  
अन्यथा=तत्सद्भावे नैव वादयेत्साक्ष्यम् । बधचिह्नेनैव निर्णयसम्भवादित्यु-  
त्तरार्द्धार्थोऽनुवाचः । विधेयस्तु पूर्वार्थार्थः । स तु स्पष्ट एव । उपस्था-  
पिताः साक्षिणोऽविलम्बेन प्रष्टव्या इत्यप्युक्तम्—

१२६ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणानिरूपणम्

तेनैव,

न कालहरणं कार्यं राज्ञा साक्षिप्रभाषणे ।

महान्दोषो भवेत्कालाद्धर्मव्यावृत्तिलक्षणः ॥

ते च साक्षिणः शपथपूर्वकं प्रष्टव्या इत्याह नारदः—

आहूय साक्षिणः पृच्छेन्नियम्य शपथैर्भृशम् ।

समस्तान् विदिताचारान् विज्ञातार्थान् पृथक् पृथक् ॥ इति ।

( व्य० प० ११२८ )

तच्च साक्ष्यं कचिद्विषये मिलितैर्वक्तव्यं कचित्प्रत्येकम् इत्याह—

वशिष्ठः,

समवेतैस्तु यद्दृष्टं वक्तव्यं तु तथैव तत् ।

विभिन्नैरेव यत्कार्यं वक्तव्यं तत् पृथक् पृथक् ॥

भिन्नकाले तु यत्कार्यं विज्ञातं यत्र साक्षिभिः ।

एकैकं वादयेत् तत्र विधिरेव प्रकीर्तितः ॥

यत्कार्यं दृष्टमित्यनुषङ्गः । यत्तु गौतमेनोक्तम्—

नासमवेताः पृष्टाः प्रब्रूयुरिति ।

तदपि वशिष्ठोक्तसमवेतसाक्ष्यविषयम् । हरदत्तस्तु नासमवेतापृष्टाः प्रब्रूयुरिति पाठं धृत्वा समवेता अपृष्टाश्च न ब्रूयुरिति व्याचख्यौ । पूर्वपाठस्तु मिताक्षराकारधृतेः सम्यगिति ।

धर्मोपबृंहितैरधर्मगर्हावचनैस्तेऽनृतभाषणाद्भीषणीया इत्याह—

नारदः,

पौराणैर्धर्मवचनैः सत्यमाहात्म्यकीर्तनैः ।

अनृतस्यापवादैश्च भृशमुत्रासयेदिमान् ॥ ( व्य० प० ११२०० )

शपथे च विशेषो दर्शितो मनुना—

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ।

गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ इति । ( ८११३ )

अन्यथा ब्रुवतस्ते सत्यं नङ्क्ष्यतीति ब्राह्मणे शपथो देयः । क्षत्रिये वाहनायुधानि ते विफलतामेव्यन्तीति । वैश्ये गोबीजकाञ्चनानि तवापचयमुपयास्यन्तीति । शूद्रेऽन्यथा वादिनस्तत्र सर्वाणि पातकानि भविष्यन्तीत्यर्थः ।

ब्राह्मणविशेषस्यापवादं स एवाह —

गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।

प्रेष्यान् वार्षुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ इति । ( ८११०२ )



विप्रग्रहणं क्षत्रियवैश्ययोरापि तद्वृत्तिजीविनोरुपलक्षणम् । उपाधेस्तु-  
ल्यत्वात् विशेषान्तरानुक्तेश्च । साक्षिणां श्रावणं विधाय श्रावणीयमाह —  
याज्ञवल्क्यः, ( अ०२ )

साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान् ।

ये पातककृतां लोका महापातकिनां तथा ॥ ( ७३ )

अग्निदानां च ये लोका येच स्त्रीबालघातिनाम् ।

स तान् सर्वानवाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ( ७४ )

सुकृतं यत्त्वया किञ्चिज्जन्मान्तरशतैः कृतम् ।

तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा ॥ ( ७५ )

“शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः” इति मानवसंवादात् पातकश्रावणं शूद्रविष-  
यकमिति मिताक्षराकारापराकीं । शपथदानश्रावणविधिभेदान्मानवे च शप-  
थदान एव तन्नियमादस्य सर्वविषयतां तु युक्तामुन्नयामः । तत्र  
“प्राङ्मृगवाकोऽनुयुज्जीत” इत्यादिसार्द्धश्लोकः कात्यायनीयः पूर्वलिखित एव ।  
मनुरपि ( अ०८ )

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन् साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ।

इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥ ( ८१ )

साक्ष्येऽनृतं वदन् साक्षी पाशैर्वध्येत वारुणैः ।

विवशः शतमाजातीस्तस्मात् साक्ष्ये वदेद्वृत्तम् ॥ ( ८२ )

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते ।

तस्मात् सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ( ८३ )

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।

मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ( ८४ )

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।

तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वश्चैवान्तरपूरुषः ॥ ( ८५ )

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काभियमानिलाः ।

रात्रिः सन्ध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ( ८६ )

आजातीः=आजननानि जन्मानीतियावत् ।

बृहस्पतिरपि—

आजन्मनश्चामरणात् सुकृतं यदुपार्जितम् ।

तत् सर्वं नाशमायाति अनृतस्य तु शंसनात् ॥

वशिष्ठोऽपि—

अथ चेदनृतं ब्रूयात् सर्वतो मिथ्यलक्षणम् ।

मृतो नरकमायाति तिर्यग्गच्छत्यसंशयम् ॥

## १२८ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

शूकरो दश वर्षाणि दश वर्षाणि गर्दभः ।  
 इवा चैव दश वर्षाणि भासो वर्षाणि विंशतिः ॥  
 कुमिकीटपतङ्गेषु चत्वारिंशत्तथैव च ।  
 मृगस्तु दश वर्षाणि जायते मानवस्ततः ॥  
 मानुष्यं तु यदाप्नोति मृकोऽन्धस्तु भवेद्धि सः ।  
 पामरो जायते पश्चात् स परित्यक्तबान्धवः ॥  
 पङ्गवन्धवधिरो मूकः कुष्टी नग्नः पिपासितः ।  
 बुभुक्षितः शत्रुगृहे भिक्षते भार्यया सह ॥  
 ज्ञात्वैताननृते दोषान् ज्ञात्वा सत्ये व सद्गुणान् ।  
 श्रेयस्करमिहान्यत्र सत्यं साक्ष्ये वदेदतः ॥

बौधायनः—

ग्रीनेवच पितृन् हन्ति ग्रीनेव प्रपितामहान् ।  
 सप्त जातानजातांश्च साक्षी साक्ष्यं मृषा ब्रुवन् ।

मनुनारदौ— ( म०अ०८।ना०व्य०प०१ )

यावतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ।  
 तावन्तः सङ्ख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥

( म०९७।ना०२०७ )

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।

शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ( म०९८।ना०२०८ )

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।

सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्म भूम्यनृतं वदीः ॥ ( म०९९।ना०२०९ )

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगेऽथ मैथुने ।

अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥ ( म०१०० )

पशुवत्क्षौद्रघृतयोर्यार्थेषु च तथाऽनुयात् ।

गोवद्रजतवस्त्रेषु धान्ये ब्रह्मणि चैव हि ॥ ( म०१०१ )

एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ।

यथाश्रुतं यथा दृष्टं सत्यमेवाज्जसा वद ॥ ( म०१०२ )

अब्जेषु रत्नेषु=मुक्ताफलादिषु । ब्रह्मणि=वेदे । अत्र हरदत्तेन “क्षुद्रपश्वनृते  
 दश हन्ति गोऽश्वपुरुषभूमिषु दशगुणोत्तरम्” इति गौतमवचनव्या-  
 ख्याने मनुवचः “पञ्च पश्वनृते हन्ति” इत्याद्युपन्यस्य पञ्चसङ्ख्याह-  
 ननदोषोत्पन्नक्षुद्रपशुविषय इति गौतमवचोविरोधं परिहृत्य यद्विषयमनृ-  
 तसाक्ष्यं दत्तं तत्तत्प्राणिनां दशादिसङ्ख्यकानां हनने यो दोषस्तमा-  
 प्नोति । भूम्यनृते तु यदीया भूमिस्तज्जातीयलक्षहननदोषः सर्वप्राणि-



हननदोषो वेति व्याख्यातम् । तच्च “यावतो बान्धवान्” इति मानवो-  
पक्रमानालोचननिबन्धनमित्युपेक्ष्यम् । तस्मात् साक्षिसम्बन्धिपित्रा-  
दिगतसङ्ख्यापरतयैव व्याख्यानं सूचितम् । गौतमीयमपि मानवसंवा-  
देनैव व्याख्येयमेकमूलकल्पनालाघवाय । ‘त्रीनेव च पितृन् हन्ति’ इत्या-  
दि बौधायनादिवचनसंवादोऽप्येवम् । यस्तु जानन्नपि दौरात्म्यात् सा-  
क्षित्वमेव नाङ्गीकुरुते । तं प्रत्याह—

योगीश्वरः,

न ददातीह यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः ।

स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि ॥ ( २।७७ )

पृष्ठाः साक्षिणो येन विधिना ब्रूयुस्तमाह—

बृहस्पतिः,

विहायोपानदुष्णीषं दक्षिणं पाणिमुद्धरन् ।

हिरण्यगोशकृद्भान् समादाय ऋतं वदेत् ॥ इति ।

साक्ष्यभिहितस्य वचनस्य परीक्षाविधानमप्याह—

बृहस्पतिः,

देशकालवयोजातिसंज्ञाद्रव्यप्रमाणतः ।

अन्यूनं चेन्निगदितं सिद्धं साध्यं विनिर्दिशेत् ॥

तत्र नारदः— ( व्य०प०१ )

निर्दिष्टेष्वर्थजातेषु साक्षी चेत् साक्ष्यमागतः ।

न ब्रूयादक्षरसमं न तन्निगदितं भवेत् ॥ ( २३२ )

देशकालवयोद्रव्यप्रमाणाकृतिजातिषु ।

यत्र विप्रतिपत्तिः स्यात् साक्ष्यं तदपि कुत्सितम् ॥ ( २३३ )

ऊनमप्यधिकं वापि प्रब्रूयुर्यत्र साक्षिणः ।

तदप्यनुक्तं विज्ञेयमेष साक्ष्यविधिः स्मृतः ॥ इति । ( २३४ )

न चाधिकाभिधानमसम्भवि वादितः प्रतिवादितो वाऽश्रुतेऽदृष्टे  
वानुभवमूलकसंस्काराभावेनास्मृततत्प्रतिपादनासम्भवादिति वा-  
च्यम् । करणापाटवादिना श्रुतिदृष्ट्योरुभयोरपि सम्भवात् । अत  
एव भ्रान्तिमूलत्वेन प्रामाण्यात् । तत्=उक्तमपि अनुक्तमित्युक्तम् । नच  
तथाप्यूनानभिधाने कुत उक्तिः साक्षिवचनात्तावतः सिद्धावेकदेशवि-  
भावितन्यायेनान्यांशस्यापि सिद्धेर्जयफलकतया न्यूनतोक्तेरदुष्टत्वा-  
दिति वाच्यम् । प्रतिज्ञातसकलसाध्यसाधकतयोद्दिष्टेषु न्यूनमाभिहि-  
तवत्सु न तन्न्यायावसर इति प्रागावेदितत्वात् । साक्ष्यमङ्गीकृत्य श्रा-  
वणविधिना श्रावितश्चेन्नाभिधत्ते तदा किं कर्त्तव्यमित्यपेक्षिते आह-

## १३० वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणानिरूपणप्र०

याज्ञवल्क्यः—

अब्रुवन् हि नरः साक्ष्यमृणं सदशबन्धकम् ।

राज्ञा सर्वे प्रदाप्यः स्यात् षट्चत्वारिंशकेऽहनि ॥ (२।७६)

सर्वं=सवृद्धिकम् । सदशबन्धकम्=राजदेयदशमांशसहितम् । राज्ञे दशमांशदानमृणादानप्रस्तावे वक्ष्यते । षट्चत्वारिंशकेऽहनि इत्यभिधानात्ततोऽर्वाग्वदन् न दाप्यः । तदपि व्याध्याद्युपद्रवराहित्ये ।

यदाह मनुः—

त्रिपक्षादब्रुवन् साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ।

तद्वृणं प्राप्नुयात् सर्वं दशबन्धं च सर्वशः ॥ इति । (८।१०७)

अगद इति राजदैवोपद्रवविरहस्याप्युपलक्षणम् । साक्षिवचनाज्जय-पराजयव्यवस्थां स्पष्टमाह—

योगीश्वरः,

यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां स जयी भवेत् ।

अन्यथावादिनो यस्य ध्रुवं तस्य पराजयः ॥ इति । ( २।२९ )

उत्तरार्धापवादमुखेन कूटसाक्षिण आह स एव—

उक्तेऽपि साक्षिभिः साक्ष्ये यद्यन्ये गुणवत्तमाः ।

द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः ॥ इति । (२।८०)

अन्यथा=अन्यतरप्रतिज्ञातार्थविपरीतम् । यद्यप्यर्थिप्रत्यर्थिसभ्यस-भापतिभिः परीक्षितसाक्षिगुणलक्षितसाक्षिवचनानन्तरं प्रमाणान्तरान्वे-षणमेवानर्हम् । अनवस्थाप्रसङ्गात्, “निर्णिके व्यवहारे” इत्यादिप्रागुक्तनार-दवचनविरोधाच्च । तथापि वादिप्रतिवाद्यन्यतरस्य स्वोक्तार्थे अन्तरात्म-साक्षितया तद्विसंवादिवचनसाक्षिषु यदि दोषाध्यवसायस्तदा प्रमा-णान्तरान्वेषणं वारयितुमशक्यम् । अत एव तदा दिव्येनान्यतरेण स्वसा-ध्ये साधिते साक्षिणः कूटत्वेन दण्ड्या इति वक्ष्यते । अर्थविसंवादि-नि चक्षुरादौ स्पष्टदोषादर्शनेऽपि यथा तज्जनितज्ञानाप्रमाण्यमेव दो-षकल्पकं तथाऽत्रापि ।

यथाहुः—

(१) यस्य च दुष्टं करणं यत्र च मिथ्येति प्रत्ययः स एवासमीचीनः प्रत्यय इति ।

( १ ) यस्य च=सम्प्रत्ययस्य करणं=चक्षुरादिकं दुष्टं=काचकामलादिदोषयुक्तं, यत्र च=‘इदं रजतम्’ इत्यादिज्ञानविषये, मिथ्येति प्रत्ययः=‘नेदं रजतम्’ इति बाधक-प्रत्ययः, स एव=द्विविधः प्रत्ययो ज्ञानरूपोऽसमीचीन इति गौतमोक्तेरस्या अर्थः ।



## साक्षिनिरूपणे साक्षिसम्भवे न दिव्याश्रयणम् । १३१

अत एव साक्षिपरीक्षातिरेकेण तद्वाक्यपरीक्षोपदेशोऽपि घटते ।

साक्षिभिर्भाषितं वाक्यं सह सभ्यैः परीक्षयेत् । इति ।

कात्यायनोऽप्याह--

यदा शुद्धा क्रिया न्यायात्तदा तद्वाक्यशोधनम् ।

शुद्धाच्च वाक्याद्यः शुद्धः स शुद्धोऽर्थ इति स्थितिः ॥ इति ।

क्रिया=साक्षिरूपा “नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता” इत्याद्युक्तसाक्षिदोषराहित्यलक्षणाद् “गृहिणः पुत्रिण” इत्याद्युक्तसाक्षिगुणसाहित्यलक्षणाच्च न्यायाद्यदा शुद्धः=परीक्षिता भवति तदा तद्वाक्यस्य=साक्षिवाक्यस्य शोधनं कार्यमिति शेषः । वाक्यशुद्धिश्चार्थाविसंवाद एव । “सत्येन शुद्ध्यते वाक्यम्” इति स्मरणात् । एवं क्रियावाक्याभ्यामुभाभ्यां शुद्धाभ्यां सकाशात् यः शुद्धः साधुरवगतोऽर्थः स शुद्धः=तात्त्विक इति स्थितिः=मर्यादा इति कात्यायनवचनार्थः । कारणदोषबाधकप्रत्ययप्रत्यासे(१) तथाभूत एवार्थ इति तात्पर्यम् । नारदवचनं तु जयावधारणोत्तरं न प्रमाणान्तरपरिग्रह इत्येतत्परम् । निर्णिकपदोपादानात् । ततः प्रागुक्तप्रमाणान्तराऽन्वेषणे न क्षतिरिति न तद्विरोधः । एवञ्च सति यदि दत्तनिगदेभ्यः साक्षिभ्योऽन्ये गुणवत्तमा द्विगुणा वा पूर्वनिर्दिष्टा असन्निहिताः सन्ति तदा त एव प्रमाणीकर्तव्याः । तदभावे पूर्वानिर्दिष्टा अपि साक्षिणो वादिना वादनीया न दिव्यमप्यवलम्बनीयम् ।

सम्भवे साक्षिणां प्राज्ञो दैविकीं वर्जयेत् क्रियाम् ।

इति वचनात् । यदा तु तदसम्भवस्तदा दिव्यमप्यवलम्बनीयम् । “सम्भव” इति वचनात् । यदि दिव्येऽपि वादिनोऽपरितोषस्तदा प्रमाणान्तरस्यावाचनिकत्वात्सभ्यैः समापनीयो व्यवहारः । यदि तु बाधुद्भाषितसाक्षिभिस्तदनुगुणेऽभिहिते प्रत्यर्थिन एव स्वप्रत्ययविसंवादेन तेषु दोषाध्यवसायस्तदा प्रत्यर्थिनः क्रियावसराभावाद्दैविकराजिकयोर्महाव्यसनयोः सप्ताहाभ्यन्तरोपनिपातेन ते परीक्षणीयाः । यथाह—

मनुः,

यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ।

रोगोऽग्निर्ह्नातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ॥ इति । (८।१०८)

दमं=कौटसाक्ष्यप्रयुक्तं दण्डम् । असति सप्ताहाभ्यन्तरव्यसनोपनिपाते प्रत्यर्थिना तावता सन्तोष्यं दिव्यं वा सत्याध्यवसायमवलम्बनीयमित्यर्थासिद्धम् ।

( १ ) निरासे इत्यर्थः । तथाभूत इति अवितथ इत्यर्थः ।

## १३२ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

यत्तु कौश्चित् “उक्तेऽपि” इत्यादिवचनमर्थनिर्दिष्टसाक्षिभिस्तदनुगुणे-  
ऽभिहितेऽपि प्रत्यर्थिना यद्यन्ये ततो गुणवत्तमा द्विगुणा वान्यथा वाच्यन्ते  
तदा पूर्ववादिनः साक्षिणः कूटा इति व्याख्यातम् । तदयुक्तम् । किमिदं  
मिथ्योत्तरविषयं कारणाद्युत्तरविषयं वा । नाद्यः । तत्र प्रत्यर्थिनः कि-  
योपन्यासानवसरात् । अभाववादित्वात् । अभावस्य च भावज्ञानसापे-  
क्षत्वात् । भावाभावयोर्भावस्यैव साध्यतौचित्यात् । अत एव मिथ्योक्तौ  
पूर्ववादी क्रियां निर्दिशेत् इत्युक्तम् । “नचैकास्मिन्निवादे तु क्रिया स्या-  
द्वादिनोर्द्वयोः” इति वचनादेकस्मिन् व्यवहारेऽर्थिप्रत्यर्थिनोर्द्वयोः  
क्रियोपन्यासानुपपत्तेश्च । न द्वितीयः । “ततोऽर्थी लेखयेत्” इत्यनेन  
पौनरुक्त्यात् । अर्थ्यत इत्यर्थः साध्यं सोऽस्यास्तीत्यर्थी साध्यवान्  
प्रतिज्ञातार्थसाधनं साध्यतयोपन्यस्तस्यार्थस्य साधनं=प्रमाणं लेखयेदिति ।  
प्राङ्न्यायकारणोत्तरयोश्च तयोरेव साध्यत्वात् प्रत्यर्थ्येवार्थी सम्पन्न  
इति स एव क्रियां निर्दिशेदिति । स्पष्टीकृतश्रायमर्थः स्मृत्यन्तरे--

प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत्क्रियाम् ।

मिथ्योक्तौ पूर्ववादी तु प्रतिपत्तौ न सा भवेत् ॥ इति ।

“उक्तेऽपि” इत्यादिसङ्गतेश्च । प्राङ्ग्यायादौ हि तस्यैव साक्षिण इति

अन्ये इत्यसङ्गतमेव भवेत् ।

अन्ये तु यत्र द्वावपि भावप्रतिज्ञावादिनौ । तावपि द्विविधौ । कौचित्पूर्-  
वोत्तरकालभेदेन प्रतिजानाते । एको वदति इदं क्षेत्रं मया पूर्वं प्रतिग्र-  
हादिना लब्ध्वा कियत्कालं भुक्त्वा देशान्तरं सकुटुम्बेन गतम् । अन्यस्तु  
वदति--सत्यमनेन पूर्वं प्रतिग्रहादिना लब्धं परं तु पश्चादित एव राज्ञा  
क्रीत्वा मह्यं दत्तमन्येन वास्मात्प्रतिगृह्य क्रीत्वा वा मह्यं दत्तमित्यादि ।  
कौचित्तु पूर्वोत्तरकालभेदं विनैव वदतः । तत्र प्रथमौ

साक्षिपूमयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः ।

पूर्वपक्षे ऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः ॥ (१।१७)

इत्यस्य याज्ञवल्क्यवचनस्य विषयौ । पूर्वकालं ममेदमिति यो वदति स  
पूर्ववादी तस्य साक्षिणः प्रमाणतयाङ्गीकार्यः । तदीयस्वत्वानपममेऽन्य-  
स्य प्रतिग्रहादिस्वत्वोपायासम्भवादिति तत्रोपपत्तिः । तस्य क्रया-  
दिना स्वत्वापगमेऽन्येनोपन्यस्ते तत्पक्षोऽधरीभूत इत्युत्तरकालं ममे-  
दमिति यो वदति स उत्तरवादी तस्य साक्षिणोऽङ्गीकार्यः पूर्ववादि-  
स्वत्वस्य सापवादत्वात् इति मिताक्षराकारोक्ततदर्थत्वात् । न तु पूर्वं यो  
निवेदयति स पूर्ववादी प्राङ्न्यायकारणोत्तराभ्यां तत्पक्षेऽधरीभूत उत्त-  
रवादिनः प्रतिवादिन इति व्याख्येयम् । “ततोऽर्थी लेखयेत्” इत्यनेनै-



साक्षिनि० उक्तेऽपीति याज्ञवल्क्यीयवचोव्याख्यानम् । १३३

वास्त्यर्थस्योक्त्या पौनरुक्त्यापत्तेः । “नचैकस्मिन्” इत्यादिनिषेधाद्वादि-  
द्वयस्य क्रियोपन्यासानुपपत्तेश्च ।

यत्त्वत्रापरैर्कोक्तम्—‘सम्भवत्येव क्वचित्प्रत्यवस्कन्दनप्राङ्न्यायो-  
त्तरवत्यपि न्याये वादिद्वयस्य क्रियोपन्यासावसरो यत्र प्रतिवा-  
दी—‘सत्यं त्वदीयमृणं धारितवानहं किन्तु प्रत्यर्पितवान्’ इत्यु-  
त्तरयति । तत्र वादी चेत्प्रत्युत्तरयति—‘सत्यं त्वयार्पितं तन्तु प्रयो-  
गान्तरे नास्मिन् प्रयोग’ इति । तदा तत्साधनाय द्वयोरपि साक्ष्युपन्या-  
ससम्भवः । परस्परोपमर्दकत्वेन युगपद्व्यवहारसम्भवस्यैकविवादे  
द्वयोः क्रियानिषेधबीजस्याभावात् । एवं प्रतिवादिना प्राङ्न्यायोत्तरे  
दत्ते यदि वादी तदैव वदति ‘न्यायान्तरे त्वया अहं पराजितो नास्मि-  
न्न्याय’ इति । तदापि पूर्वोक्तीत्या द्वयोः साक्षिसम्भवः । तत्राप्रसा-  
क्षिसत्त्वे पूर्ववादिनः साक्षिणः प्रथमं स्वीकार्याः । प्राग्वादिनो निरु-  
त्तरीभावेन पूर्वपक्षेऽधरीभूते उत्तरवादिनः प्रत्यवस्कन्दनप्राङ्न्यायसा-  
धकसाक्षिण इति न विरोध इति ।

तत्रापि वक्तव्यम् । तादृशविषयेऽपि प्रत्यवस्कन्दनप्राङ्न्याययोर-  
साध्यतया प्राग्वादिन एवार्थिर्द्रष्टृभिः जाते तस्य निरुत्तरतायां तु  
प्रत्यर्थिन एवेति द्वेधापि “ततोऽर्थी लेखयेत्” इत्यनेन गतार्थतास्य  
नापैति । मिताक्षराव्याख्याने तु द्वयोरपि भाववादितयार्थित्वसाम्ये “ततो-  
ऽर्थी लेखयेत्” इत्येतद्वचनाविषयत्वात्कस्यात्र क्रियेत्यपेक्षायामेतद्व-  
चनारम्भो घटते । तथाच मिताक्षरायामुक्तम्—“एतस्य च सर्वव्यवहारवि-  
लक्षणत्वाद्भेदेनोपन्यास” इति । नारदेन तु स्पष्टमेवायमर्थ उक्तः ।

मिथ्या क्रिया पूर्ववादे कारणे प्रतिवादिनि ।

प्राङ्न्यायविधिसिद्धौ तु जयपत्रं क्रिया भवेत् ॥

इत्युक्त्वा—

द्वयोर्विवदतोरर्थे द्वयोः सत्सु च साक्षिषु ।

पूर्वपक्षो भवेद्यस्य भवेद्युस्तस्य साक्षिणः ॥ (व्य० प० १ श्लो० १६४)

इत्यभिधानात् । द्वितीयौ (१) तु “उक्तेऽपि” इत्यस्य वचनस्य विष-  
यो । पूर्वोत्तरवादिनोः समगुणेषु समसङ्ख्येषु च साक्षिषु सत्सु पूर्व-  
वादिनः साक्षिणोऽभ्युपेयाः । यदा तूत्तरवादिनो गुणवत्तमा द्विगुणा  
वा तद्विपरीतमभिधत्ते तदा त एव । पूर्ववादिनस्तु साक्षिणः कूटा  
विज्ञेया इति च तदर्थः । एवं च नाभावस्य साध्यतापत्तिर्द्वयोरपि भा-  
ववादित्वात् चतुर्विधोत्तरविलक्षणत्वाच्च । नात्र “मिथ्या क्रिया पूर्ववादे”

(१) पूर्वोत्तरकालभेदं विनैव वादिनौ ।

## १३४ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

इत्याद्युक्ता क्रियाव्यवस्था । यथा चात एव तवात्रैकस्य वादिनः क्रिया-  
प्रतिषेधो न प्रवर्तते तथा ममापि द्वयोः क्रियाप्रतिषेध इति वदन्ति ।

तदप्यापातमनोहरम् । “उक्तेऽपि” इत्यादिवचनादेतावतोऽर्थस्य  
शब्दतः प्रकरणादर्थाद्वाऽनवगमात् । “साक्षिषूभयतः सत्सु” इत्यस्य  
योगीश्वरवचनस्य “द्वयोर्विवदतोः” इत्यादि नारदवचनस्य च पूर्वोपपादित-  
रीत्या पूर्वापरकालालिङ्गितभाषावादिविषयत्वे तदनालिङ्गितविषयस्था-  
स्य तदपवादत्वासम्भवाच्च । न चान्यमते (१) अपरार्कादिमतवत्तयोरपि वा-  
दिविषयत्वमेवास्तिवति वाच्यम् । तस्योक्तदूषणत्वात् । ईदृश्यपि विषये  
वादिप्रतिवादन्यतरस्योक्तौ मिथ्यात्वकारणान्यतरपर्यवसानावश्य-  
म्भावे चतुर्विधोत्तरविलक्षणत्वासम्भवाच्च । द्वयोरपि भाववादितया-  
र्थित्वसाम्यमेव केवलं व्यवहारान्तरवैलक्षण्यमस्य, विधाचतुष्कभिन्न-  
विधोत्तरासम्भवाच्च ।

ननु कात्यायनेनाप्युपन्यस्तसाक्षिभिस्तदनुगुणेऽभिहिते प्रत्यर्थी यदि  
ततो गुणवत्तमान् बहून्वान्यथा वादयति तदा वादिनः साक्षिणः कूटा  
इति स्फुटमुक्तम् ।

यथाह—

यत्र बै भावितं कार्यं साक्षिभिर्वादिना भवेत् ।

प्रतिवादी यदा तत्र वादयेत्कार्यमन्यथा ।

बहुभिस्तत्कुलीनैर्वा कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः ॥ इति ।

तत् कार्यमिति सम्बन्धः । बहुभिरिति पूर्वसाक्ष्यपेक्षया बहुत्वम् ।  
कुलीनैरित्यनेन तदपेक्षया गुणवत्तरत्वं विवक्षितम् । अपरार्कमदनरत्नकारा-  
भ्यामेतत्संवादादेव योगीश्वरवचोऽपि “उक्तेऽपि” इत्यादिकमेतदर्थकत-  
यैव व्याख्यातम् । न च कथमेकविवादे द्वयोः क्रियेति वाच्यम् । यत-  
स्तुल्यवदुभयोर्मास्तु क्रियाप्राप्तिर्युगपद्वयवहारासम्भवात् । यदा शा-  
स्त्रतः प्राप्तक्रियेणैव कियोपन्यासे कृते परेण तद्दूषणायैव क्रियान्तर-  
मुपन्यस्यते तदा को दोषः । अनवस्थाप्रसङ्गस्तु सङ्ख्यागुणसाम्ये न  
तु वैषम्ये । तेन जयावधारणात्प्राग्यथैकस्य क्रियाद्वयमेवं द्वयोरपि क्रि-  
याद्वये न विरोध इत्यपराक्येण समाहितमिति ।

उच्यते । अस्तु वचनात् कात्यायनीयादेवमपि । योगीश्वरवचस्तु “त-  
तोऽर्थी लेखयेत्” इति तद्वचस्येव सर्वस्यार्थस्य सङ्ग्रहसम्भवाद्गता-  
र्थविज्ञानयोगिव्याख्ययैव सङ्गच्छते । साधनपदेन साधनक्षममेवो-  
च्यते । प्रतिवादिना तस्मिन्नाभासीकृते साधनत्वमेव तस्याप्यमत-



मिति तेनैव तदर्थलाभात् । अत एवाह—

स एव,

तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा । इति ।

कूटसाक्षिणो दण्डार्हाः प्रायश्चित्तार्हाश्च । तथाच—

याज्ञवल्क्यः,

पृथक् पृथक् दण्डनीयाः कूटकृतसाक्षिणस्तथा ।

विवादाद्विगुणं दण्डं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः ॥ ( २८१ )

नारदः—

अवीचिनरके कल्पं वसेयुः कूटसाक्षिणः ।

बृहस्पतिः—

कूटसभ्यः कूटसाक्षी ब्रह्महा च समाः स्मृताः ॥

मनुस्तु—

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥ (११'८८)

इत्यादिना कूटसाक्षिणां ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तमाह । तत्तत्रैव विवेचयिष्यामः । दण्डस्त्वत्र विविच्यते । विवादात्=तत्पराजयनिमित्तदण्डात् । न तु विवादास्पदीभूताऽज्ञानात् । अधनव्यवहारेष्वव्याप्तेः । कूटकृत=यो लोभभयादिप्रदर्शनेन साक्षिणः कूटान् करोति । न तु सुवर्णादिकूटकृतं गृह्यते । अप्रकृतत्वात् । विवास्यो=राष्ट्रात् । एतच्च लोभादिकारणविशेषाज्ञानेऽनभ्यासे च बोध्यम् । लोभादौ ज्ञातेऽभ्यासे तु मनुक्तम्—

लोभात्सहस्रं दण्ड्यः स्यात् मोहात्पूर्वं तु साहसम् ।

भया(१)द्वै मध्यमो दण्डो मैत्र्यात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥

कामादशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु विगुणं परम् ।

अज्ञानाद्वै शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥ इति । (८।१२०।१२१)

तत्र मोहो=विपर्ययज्ञानम् । अज्ञानमस्फुटज्ञानम् । तात्कालिको भ्रम इति कल्पतरुः । बालिश्यं=ज्ञानानुत्पाद इति तेषां भेदः । स्फुटमन्यत् । पौरस्त्यनिबन्धेषु रत्नाकरादिषु बालभावबालिश्यपदार्थत्वेन यौवनोन्मेषप्राप्तौ मद इति व्याख्यातम् । तदशब्दार्थत्वात् सन्दर्भविरोधाच्चोपेक्ष्यम् । सहस्रादिसङ्ख्येयाश्च ताम्रिकाः पणाः । व्यवहारविषये तथैव परिभाषणात् इति मिताक्षराकारः ।

आहान्नापरार्कः—नेयं व्यवस्था युक्ता । लोभादिनिमित्तकमेव हि कौटसाक्ष्यमुपन्यस्यन् मनुना । नच सम्भवत्यन्यत्तन्निमित्तम् ।

## १३६ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

यथाह सः—

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्यात् कामात् क्रोधात्तथैव च ।

अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ (८।११८)

अज्ञानं=किञ्चिज्ज्ञानम् । बालभावो=अपरिणतत्वम् । तस्माद्योगीश्वरो-  
क्तो दण्डः स्वल्पापराधेऽनभ्यासे च ज्ञेयः । गुर्वपराधे अभ्यासे च म-  
नूक्त इति न्याय्या व्यवस्था इति ।

तत्रेदं वाच्यम् । लोभादौ सहस्रादिदण्डस्य मानवस्य विवादप-  
राजयहेतुकद्विगुणदण्डाद्याज्ञवल्क्यायाश्चाधिक्यनियमो येन गुर्वपरा-  
धविषयताभ्यासविषयता वा कल्पेत । क्वचिद्वैपरीत्यस्यापि सम्भवात् ।  
नच कौटसाक्ष्ये लोभाद्यतिरिक्तकारणासम्भवात् मनुनापि तावतामेव  
परिगणनाच्च न कारणभेदे कृता व्यवस्था सुस्थेति वाच्यम् । वस्तुतो  
हेत्वन्तरासम्भवे तु हेतुविशेषापरिज्ञानतज्ज्ञानयोः सम्भवात् तत्कृत-  
व्यवस्थायामदोषात् । अत एव मिताक्षरायां लोभादिति विशेषज्ञानाज्ञाने  
एव व्यवस्थापकत्वेनोक्ते न तु लोभादितद्भिन्नहेतुसत्त्वासत्त्वे । या  
तु मिताक्षराकृताभ्यासानभ्यासकृता व्यवस्थोक्ता सा क्वचित् तथापि  
सम्भवतीत्याशयेन । ज्ञानाज्ञानकृतैव तु तार्त्त्विकी । अत एव मदनरत्न-  
कृतापि सैवाहता ।

तथा मनुरेव—

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन् वर्णान् धार्मिको नृपः ।

प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ ( ८।१२३ )

ब्राह्मणभिन्नान् श्रीन्=क्षत्रियादीन् प्रागुक्तदण्डेन दण्डयित्वा प्रवास-  
येत्=मारयेत् । प्रपूर्वस्य वसतेरर्थशास्त्रे मारणे प्रयोगात्, प्रवासनमप्य-  
पराधानुरोधेनोपच्छेदजिह्वाच्छेदप्राणवियोजनरूपं वेदितव्यम् । ब्राह्मणं  
विवासयेत्=विवासनमपि राष्ट्रान्निष्कासनम् । विगतवासा विवासास्तं  
करोतीति व्युत्पत्त्या नग्नीकरणम् । वसत्यस्मिन् वासो गृहं तद्वि-  
युक्तं करोतीति व्युत्पत्त्या गृहभङ्गकरणं वा । कौटसाक्ष्यविषयानुसा-  
रेण गुणागुणद्रव्यानुबन्धानुसारेण चार्थदण्डसाहित्यं यथायथं विज्ञे-  
यम् । दण्डयित्वेत्यंशस्यात्राप्यनुषङ्गात् । एतच्चाभ्यासविषयम् । कुर्वाणा-  
निति वर्त्तमाननिर्देशात् । न च वर्त्तमाननिर्देशादतीतादिव्यावृत्तिमानं  
व्यवसीयते न त्वभ्यास इति वाच्यम् । तद्यावृत्तेरनुपयोगात् । प्रत्युत  
कौटसाक्ष्यमभ्यासेन कृत्वोपरतस्य पश्चादेतदण्डाभावप्रसङ्गात् । तस्मा-  
त्कौटसाक्ष्यमत्यजत इत्यर्थकतयाभ्यासावगतिः । न च दण्ड-  
यित्वेत्यस्यात्रानुषङ्गे प्रमाणाभावानुशब्दवशाच्च विवासनमेव कूटसा-



क्षित्वाभ्यासकारिणो ब्राह्मणस्य दण्डो न त्वर्थदण्ड इति वाच्यम् ।

न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् । ( मनु० ८।३८० )

न शारीरो दण्डो ब्राह्मणस्य ।

इत्यादिवचनैः शारीरदण्डनिषेधात् । अर्थदण्डस्याप्यभावे स्वल्प-  
विषयेऽपि कौटसाक्ष्याभ्यासे निर्वासननग्नीकरणगृहभङ्गादिप्रसङ्गात् ।  
दण्डाभावस्य चाप्रसक्तेः । तत्र तत्रार्थदण्डस्य ब्राह्मणविषयस्यापि  
वक्ष्यमाणत्वाच्च । तुशब्दस्तु प्रधानविषयप्रवासनीक्रियामात्राद्यभि-  
प्रायकत्वेनाप्यविरुद्धः ।

याज्ञवल्क्यः—

यः साक्ष्यं भ्रावितोऽन्येभ्यो निहनुते तत्तमोवृत्तः ।

स दाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ ( २।८२ )

यः साक्ष्यमङ्गीकृत्य अन्यैः साक्षिभिः सह साक्ष्यं भ्रावितः सन्  
निगदसमये तमोगुणेनावृत्तो रागद्वेषाद्याक्रान्तचित्तस्तत्साक्ष्यमन्येभ्यो  
निहनुते नाहमत्र साक्ष्यं स्वीकरोमीति प्रकाशयति । यथा तेप्येतदुनरो-  
धात्तन्न स्वीकुर्वते कूटतां वा कुर्वन्ति, स विवादपराजयनिमित्तकदण्डा-  
पेक्षयाष्टगुणदण्डं दाप्योऽपराधमहत्त्वात् । अन्येभ्य इति “श्लाघ-  
हनुङ्स्थाशपां स्त्रीप्स्यमानः” (१।४।३४) इत्यनेन सम्प्रदानसंज्ञायां च-  
तुर्थी । तेन पूर्वोक्तार्थलाभः । ब्राह्मणं तु तथा कुर्वाणं विवासयेत् । विवा-  
सनं च व्याख्यातरीत्या देशनिर्वासननग्नीकरणगृहभङ्गान्यतमरूपमनु-  
बन्धाद्यपेक्षया व्यस्तसमस्तविधया ज्ञेयम् । यत्तु मिताक्षराकृता अष्टगुणद-  
ण्डदानासमर्थमिति व्याख्यातम् । तत्प्रधानक्रियानिरूपितवैलक्षण्यप्रति-  
पादकतुशब्दविरोधादुपेक्ष्यम् । नचैवमल्पविषयेऽपि विवासनमदण्ड-  
ता वा प्रसज्येतेति वाच्यम् । वचनोपात्तविषयस्यैव दण्डस्य युक्त-  
त्वात् । अत एवाह—

नारदः,

भ्रावयित्वा ततोऽन्येभ्यः साक्षित्वं यो विनिहनुते ।

स विनेयो भृशतरं कूटसाक्ष्यधिको हि सः ॥ इति ।

( व्य ०५० १ श्लो० १९७ )

तथा चापराकोऽपि—‘ब्राह्मणश्चेदेवंविधस्तं विवासयेन्नतु दण्डयेत्’  
इत्येवं व्याचख्यौ । क्षत्रियादीनां तु दण्डदानासामर्थ्यं स्वजात्युचितकर्म-  
करणनिगडबन्धनकारागृहनिरोधनादि तावद्द्रव्यसमीकरणानुरूपं बो-  
ध्यम् । सर्वेषामपि निह्वकारित्वे समानदोषत्वात्सर्वेऽपि प्रत्येकमष्ट-  
गुणं दण्ड्याः ।

१८ वी० मि०

## १३८ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

प्रागन्यथोक्त्वा पुनरन्यथोक्तौ कात्यायन आह—

उक्तान्यथा वृवाणाश्च दण्ड्याः स्युर्वाक्छलान्विताः ।

अनुबन्धादितारतम्येनात्र दण्डतारतम्यं कल्प्यम् । अन्यतरेणोप-  
न्यस्ताः साक्षिणोऽन्येन यदि रहसि संवाद्यन्तेऽन्यद्वारेण भेद्यन्ते वा  
तदा प्रकृतार्थहानिस्तस्येत्याह—

नारदः,

न परेण समुद्दिष्टमुपेयात्साक्षिणं रहः ।

भेदयेच्चैव नान्येन ह्येतैवं समाचरन् ॥ इति ।

( व्य० प० १ श्लो० १६४ )

साक्षिणामवचनानृतवचने प्रतिषिद्धे क्वचित् तत्प्रतिप्रसवमाह—

याज्ञवल्क्यः,

वर्णिनां तु बधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत् । इति । ( २८३ )

साक्षिणा सत्ये उक्ते यत्र वर्णवतां ब्राह्मणादीनां राजदण्डरूपो बध  
आपद्यते तत्र बधप्रयोजकताख्यमहादोषपरिहाराय साक्ष्यनृतं वदेत् ।  
सत्यं न वदेदित्यर्थः । तथा चावचनानृतवचनयोर्द्वयोरप्यभ्यनुज्ञा  
लभ्यते । शङ्काभियोगादिस्थले साक्षिसत्यवचनेन यद्यभियुक्तस्य बधः  
प्रसज्यतेऽभियोक्तुश्च शङ्काभियोगकारित्वान्न तत्प्रसक्तिस्तत्रानृतवच-  
नाभ्यनुज्ञा । तत्त्वाभियोगादौ च सत्यासत्यवचने यत्रान्यतरबधप्रसक्ति-  
रपरिहार्या तत्र तूष्णीम्भावोऽभ्यनुज्ञायते । यदि तु राजा कथञ्चिद-  
परिहार्या तत्र तूष्णीम्भावोऽभ्यनुज्ञायते । यदि तु राजा कथञ्चिद-  
प्यकथनं नानुमन्यते तदाऽसाक्षिता सम्पादनीयेत्यर्थसिद्धम् । तदस-  
म्भवे सत्यमेवाभिधेयम् । वर्णिबधप्रयोजकत्वदोषपरिहारेऽनृतवचनदो-  
षस्वीकारस्यानुचितत्वात्प्रायश्चित्तद्वयप्रसक्तेर्वर्णिबधप्रायश्चित्तं परं य-  
थाशास्त्रमादरणीयमिति विज्ञानयोगिनः ।

मनुरपि—

शूद्रविद्वक्षत्रविप्राणां यत्रर्त्तोकौ भवेद्वधः ।

तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥ इति । ( ८१०४ )

इदमपि योगीश्वरवचनवद्विशिष्टाभावपरतया व्याख्येयम् । अवच-  
नानृतवचनाभ्यनुज्ञालाभाय । सत्याद्विशिष्यत इत्यस्यायमर्थः । ब्राह्मणादि-  
बधप्रयोजकतानिबन्धनाधिकदोषपरिहारायावचनानृतवचनप्रयुक्तादप-  
दोषस्वीकार उचित एवेति प्रशंसार्थम् । यद्यपि

न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।

राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥

न ब्राह्मणबधादभूयानधर्मो विद्यते क्वचित् ।

साक्षिनि० अनृतवचनाद्यभ्यनुज्ञा प्रायश्चित्तं च । १३९

तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् ॥ (८।३८०।३८१)  
इत्यादिमन्वादिवाक्यैर्ब्राह्मणवधदण्डनिषेधाद्विप्रग्रहणमनर्हम्, त-  
थापि तस्य वधस्थानीयदण्डप्रसक्तेस्तत्परिहारायैवावचनानृतवच-  
नाभ्यनुज्ञा ।

तथाच मनुः—

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ।

इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥ इति । (२।३७९।)

स्मृत्यन्तरेऽपि—

ब्राह्मणस्य वधो मौण्ड्यं पुरान्निर्वासनं तथा ।

ललाटे चाङ्गकरणं प्रयाणं गर्दभेन च ॥ इति ।

न च वधशब्देनार्थद्वयपरिग्रहे वैरूप्यम् । निमित्तांशपातिनि तत्प्र-  
सक्तावपि विधिवैषम्याप्रसक्तेः । यद्वा—

गोरक्षकान् बाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।

प्रेष्यान्वाधुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ ( ८।१०२ )

इति मानवात्तेषां शूद्रवद्वधाभ्यनुज्ञाप्रतीतेस्तत्परं विप्रग्रहणम् ।  
तथा च वधपदमुभयत्र मुख्यार्थकमेव । अयं त्वपराकौत्समाधिरनुपा-  
देयः । तस्य मानवस्य प्रकरणाच्छपथपरत्वेन दण्डविषयत्वाभावात् ।  
“सर्वपापेष्वपि स्थितम् । तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत्”  
इत्यादिश्रवणाद्विप्रवधमात्रस्यैव परिहरणीयत्वप्रतीतेश्च । अथवा यत्र  
क्रोधाद्यावेशवशेनातिक्रम्य निषेधं विप्रस्यापि राज्ञा म्लेच्छादिना वा  
वधदण्डः कर्तव्य इति सम्भावना तत्रैवेदमस्तु । यथाकथञ्चित्प्रसक्त्यु-  
पजीवकत्वादस्य, राज्ञोऽस्तु परं दोषः । पापीयसस्तु क्षत्रियादेर्वधप्रस-  
क्तावपि नोभयाभ्यनुज्ञेत्याह—

गौतमः,

नानृतवचने दोषो जीवतश्चेत्तदधीनं न तु पापीयसो जीवनमिति ।

नचैवमवचनानृतवचनयोरभ्यनुज्ञानात्प्रत्यवाय एव तत्र सर्वथा ना-  
स्तीति मन्तव्यम् । प्रायश्चित्तस्मरणात् ।

तथा च याज्ञवल्क्यः—

तत्पावनाय निर्वाप्यश्चरुः सारस्वतो द्विजैः । इति । ( २।८३ )

मनुरपि—

वाग्दैवतैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् ।

अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥

कुम्भाण्डैर्वापि जुहुयात् घृतमग्नौ यथाविधि ।



उदित्यूचा वा वारुण्या इत्युचेनावैवतेन वा ॥ इति ॥ (म० १०५।१०६)

ते इति प्रक्रमान्जुहुयादिति छान्दसो वचनव्यत्ययः । उदुत्तमञ्चेति पाठे उदुत्तमं वरुणपासेति क्रक् । तदित्यूचेति पाठे तत्त्वायामि ब्रह्मणेति वारुणी ज्ञेया । न चाभ्यनुज्ञावचःसार्थक्याय प्रत्यवायाभावकल्पनमावश्य-  
कमिति प्रायश्चित्तविधानं नैमित्तिकक्षामवत्यादिवत् पुंश्चलीवानरदंशा-  
दिनिमित्तकद्वादशरात्रादिवद्वेति वाच्यम् । “तत्पावनाय” “एनसस्तस्य  
कुर्वाणा निष्कृतिं पराम्” इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः । न चैवं प्रतिप्रसववैयर्थ्यम् ।  
यतोऽनृतवचनप्रतिषेधो द्विविधः पुरुषमात्रसाधारणः साक्ष्यप्रयुक्तश्च ।  
तत्र साक्ष्यप्रयुक्तप्रतिषेधनिबन्धनप्रत्यवायस्य प्रतिप्रसवादभावो न तु सा-  
धारणनिबन्धनप्रत्यवायस्यापीति प्रायश्चित्तविधिवलात् कल्प्यते । यद्यपि  
भूयसः साक्ष्यनृतप्रभवप्रत्यवायस्यापगमेऽल्पस्यानृतमात्रप्रभवस्य त-  
स्याभावोऽप्यविनाभावादानुषङ्गिकोऽवश्यम्भावी । ब्रह्मवधसुरापानादि-  
प्रभवप्रत्यवायनाशकद्वादशाब्दादिनाऽवगोरणाघ्राणादिप्रभवतन्नाशवत् ।  
तथाप्यत्राभ्यनुज्ञायाः प्रायश्चित्तविरुद्धयोरुभयोरपि सार्थक्याय  
भूयो निवृत्तयोरप्यानुषङ्गिकोऽप्यविनाभूतोऽपि स्वल्पोऽपि न  
निवर्त्तत इति गम्यते । अत्र चरुरिति योगेश्वरवचन एकवचनाद्वैव-  
तैक्याश्च मानवे चरुभिरिति बहुवचनं कर्तृबहुत्वन्यायप्राप्तबहु-  
त्वानुवादकम् । द्विजग्रहणात् शूद्रस्यैतत्प्रायश्चित्तं किन्त्वन्यत् ।

तथा च विष्णुः—

तत्पावनाय कुष्माण्डीभिर्द्विजोऽग्निं जुहुयात् । शूद्रश्चैकाहिकं गो-  
दशकस्य प्राप्तं दद्यादिति ।

ऐकाहिकम्=एकाहभक्षणपर्याप्तम् । वयं तु “तत्पावनाय” “अनृतस्यै-  
नसस्तस्य” इत्यादियोगेश्वरमन्वादिवचनेषु तच्छब्दोपादानात् साक्ष्य-  
नृतपातकमेव गृह्यते । तन्निरसनायैवेदं प्रायश्चित्तम् । नच तस्याभ्यनुज्ञा-  
वचनेनाभावावगमात् कथमेतदिति वाच्यम् । वर्णिवधदोषापेक्षया  
साक्षिवितथवचनदोषस्याल्पस्य सहातेति “तद्वि सत्याद्विशिष्यते”  
इति वाक्यशेषपर्यालोचनेन तस्य तात्पर्यात् । अत एवावचने दोषप-  
रिहारोऽप्यनेन प्रायश्चित्तेन । सामान्यतः साक्षिभिन्नस्यावचनदोषाभा-  
वात् । नच “अब्रुवन्विब्रुवन्वापि” इति वचनमवचने सामान्यतो दोषप्र-  
तिपादकमिति वाच्यम् । तस्य प्रकरणात् ‘सभा वान प्रवेष्टव्या’ इति वा-  
क्यशेषाच्च सभ्यपरत्वात् । अत एव साक्षिणां पृथग्वचने दोषवचनं  
सफलम् । नच साक्षिणामवचनानृतवचनयोर्दोषाधिक्यादिदमल्पप्राय-  
श्चित्तमनुचितमिति वाच्यम् । अभ्यनुज्ञाविधेरस्मिन्विषयेऽल्पदोषपर-

त्वस्योक्तत्वात् । एतेन भूयोदोषनिवृत्तावल्पदोषनिवृत्तिरविनाभावाद-  
न्यत्र तु विधिद्वयसाफल्याय न तथेत्यपि कल्पनीयम् । ततश्च वर्णिवध-  
प्रसक्तौ साक्षिणोऽप्यनृतवचनावचनयोर्वधप्रयोजकतादोषापेक्षायारूपो  
दोषस्तत्र चेदं प्रायश्चित्तं तेन च ततोऽप्यल्पः सामान्यानृतवचनप्रति-  
षेधातिक्रमनिबन्धनो दोषः सुतरामुपैतीति तात्पर्यमिति ब्रूमः ।

इति साक्षिनिरूपणम् ।

### अथ लेख्यं निरूप्यते ।

तत्र बृहस्पतिः—

साक्षिणामेष निर्दिष्टः सङ्ख्यालक्षणनिश्चयः ।  
लिखितस्याधुना वच्मि विधानमनुपूर्वशः ॥  
षाण्मासिकेऽपि समये भ्रान्तिः सञ्जायते नृणाम् ।  
धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्राकृढान्यतः पुरा ॥  
राजलेख्यं स्थानकृतं स्वहस्तलिखितं तथा ।  
लेख्यं तु त्रिविधं प्रोक्तं भिन्नं तद्बहुधा पुनः ॥  
भागदानक्रियाधानसंविदासंक्रणादिभिः ।  
सप्तधा लौकिकं लेख्यं त्रिविधं राजशासनम् ॥

मरीचिरपि—

स्थावरे विक्रयाधाने विभागे दान एव च ।  
लिखितेनाप्नुयात् सिद्धिमविसंवादमेव च ॥

भागो=विभागः । आधानमाधीकरणम् । संवित्=समयः । आधिशब्देन  
विशुद्धाधिग्रहणम् । भागपत्रादीनां लक्षणमाह—

बृहस्पतिः,

भ्रातरः संविभक्ता ये स्वरुच्या तु परस्परम् ।  
विभागपत्रं कुर्वन्ति भागलेख्यं तदुच्यते ॥  
भूमिं दत्त्वा तु यत्पत्रं कुर्याच्चन्द्रार्ककालिकम् ।  
अनाच्छेद्यमनाहार्यं दानलेख्यं तु तद्विदुः ॥  
गृहक्षेत्रादिकं क्रीत्वा तुल्यमूल्याक्षरान्वितम् ।  
पत्रं कारयते यत्तु क्रयलेख्यं तदुच्यते ॥  
जङ्गमं स्थावरं बन्धं दत्त्वा लेख्यं करोति यत् ।  
गोप्यभोग्यक्रियायुक्तमाधिलेख्यं तदुच्यते ॥  
ग्रामो देशश्च यत्कुर्यात् मतलेख्यं परस्परम् ।  
राजाविरोधि धर्ममार्थं संवित्पत्रं वदन्ति तत् ॥

१४२ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

वस्त्रान्नहीनः कान्तारे लिखितं कुरुते तु यः ।  
कर्माणि ते करिष्यामि दासपत्रं तदुच्यते ॥  
धनं वृद्ध्या गृहीत्वा तु स्वयं कुर्याच्च कारयेत् ।  
उद्धारपत्रं तत्प्रोक्तमृणलेख्यं मनीषिभिः ॥ इति ।

विशुद्धिपत्रमुक्तं कात्यायनेन—

अभिशापे समुत्तीर्णे प्रायश्चित्ते कृते जनैः ।  
विशुद्धिपत्रकं देयं तेभ्यः साक्षिसमन्वितम् ॥

सन्धिपत्रमप्याह स एव—

उत्तमेषु समस्तेषु अभिशापे समागते ।  
वृत्तानुवादलेख्यं यत् तज्ज्ञेयं सन्धिपत्रकम् ॥

अन्वाधिपत्रमाह प्रजापतिः—

धनी धनेन तेनैव परमार्धि नयेद्यदि ।  
कृत्वा तदाधिलिखितं पूर्वं चास्य समर्पयेत् ॥

पूर्वमाधिपत्रम् । सीमापत्रमप्याह—

कात्यायनः,

सीमाविवादे निर्णीते सीमापत्रं विधीयते । इति ।

ऋणशोधने कृते ऋणपत्रनाशादौ सति प्राप्तिपत्रमुत्तमर्णेनाधमर्णा-  
य देयमित्याह—

याज्ञवल्क्यः,

दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्धौ बान्यत्तु कारयेत् । ( अ० २ श्लो १४ )  
अत्र लौकिकं सप्तविधलेख्यं स्वकृतान्यकृतभेदेन द्विविधं नारदेनोक्तम्—  
लेख्यं तु द्विविधं प्रोक्तं स्वहस्तान्यकृतं तथा ।

स्वकृते साक्ष्यनियमोऽन्यकृते तन्नियम इत्याहोत्तरार्द्धेन—

स एव,

असाक्षिमत्साक्षिमच्च सिद्धिर्देशस्थितेस्तयोः ॥ इति ।

( व्य० प० २ श्लो० १३५ )

असाक्षिमत्साक्षिमदपीत्यर्थः ।

तथा च याज्ञवल्क्यः—

विनापि साक्षिभिल्लेख्यं स्वहस्तालिखितं च यत् ।

तत्प्रमाणं स्मृतं सर्वं बलोपधिकृतादृते ॥ इति । ( २।८९ )

अपिशब्दात्प्रागुक्तसाक्षिमदपि । बलोपधिकृतपर्युदासः सर्वलेख्य-  
विषयो न स्वकृतमात्रविषयः ।



तथा च मनुः—

बलाद्भुक्तं बलादत्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् ।

सर्वान् बलकृतानर्थानकृतान्मनुरग्रवीत् ॥ (७।१६८)

नारदोऽपि—

मत्ताभियुक्तस्त्रीबालबलात्कारकृतं च यत् ।

तदप्रमाणं लिखितं भयोपधिकृतं तथा ॥ इति । (२।१३७)

अन्यकृते विशेषान्तरमाह योगीश्वरः—

यः कश्चिदर्थो निष्णातः स्वरूपा तु परस्परम् ।

लेख्यं तु साक्षिमतकार्यं तस्मिन्धनिकपूर्वकम् ॥

समामासतदङ्गहिर्नामजातिस्वगोत्रकैः ।

सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम् ॥ (२।८४।८५)

धनिकनामपूर्वकमित्यनेनोत्तमर्णनामोपरि लेख्यमधमर्णनाम तदध इत्यर्थः । एतच्चर्णपत्रादिविषयमन्यत्रासम्भवात् । समामासादि यथा-सम्भवमन्यत्रापि । सब्रह्मचारिकं बहुचादिशाखाप्रयुक्तगुणनाम बहु-चः कठ इत्यादि ।

वाशिष्ठोऽपि—

कालं निवेश्य राजानं स्थानं निवसनं तथा ।

दायकं ग्राहकं चैव पितृनाम्ना च संयुतम् ॥

जातिं गोत्रं च शाखां च द्रव्यमार्धि ससङ्ख्यकम् ।

वृद्धिं ग्राहकहस्तं च विदितार्थौ च साक्षिणौ ॥

स्थानं=जनपदः । निवसनं=पुरग्रामादिकम् । ग्राहकोऽधमर्णः । ग्राहकहस्तनिवेशनप्रकारमाह—

योगीश्वरः,

समाप्तेऽर्थे ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयेत् ।

मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरि लेखितम् ॥ इति । (२।८६)

साक्षिणावित्यनेन द्वयोरभ्यनुज्ञानात् उपवरत्वनियमो नात्रेत्युक्तमेकस्तु न भवत्येवेति । अत्र साक्षिलेखकस्वहस्तचिह्नं कार्यमित्यप्याह—

स एव,

साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम् ।

अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः ॥

उभयाभ्यर्थितेनैतन्मया ह्यमुकसुनुना ।

लिखितं ह्यमुकेनेति लेखकोऽन्ते ततो लिखेत् ॥ (२।८७।८८)

समा इत्यनेन गुणसाम्यं सङ्ख्यासाम्यं च वैषम्यानियमाय विवक्षितम् । असमा इत्यकारप्रश्लेषस्तु वैषम्यस्य सामान्यत एव साक्षिषु प्राप्तेर्नोपादेयः । ऋणिसाक्षिणोः सर्वथा लिप्यनभिज्ञत्वे—

नारद आह,

अलिपिञ्च ऋणी यः स्यात्स्वमतं स तु लेखयेत् ।

साक्षी वा साक्षिणान्येन सर्वसाक्षिसमीपतः ॥ इति ।

“त्रिविधं राजशासनम्” इत्युक्तं त्रैविध्यं विविनक्ति-  
बृहस्पतिः,

दत्त्वा भूभ्यादिकं राजा ताम्रपट्टे पटेऽथ वा ।

शासनं कारयेद्धर्म्यं स्थानवंध्यादिसंयुतम् ॥

मातापिशोरात्मनश्च पुण्यायामुक्तसुखे ।

दत्तं मयामुकायाद्य दानं सग्रहचारिणे ।

चन्द्रार्कसमकालीनं पुत्रपौत्रान्वयानुगम् ।

अनाच्छेद्यमनाहार्यं सर्वभागविवर्जितम् ॥

दातुः पालयितुः स्वर्ग्यं हर्तुर्नरकमेव च ।

षष्टिवर्षसहस्राणि दानोच्छेदफलं लिखेत् ॥

ज्ञातं मयेति लिखितं सन्धिविग्रहलेखकैः ।

समुद्रं वर्षमासादिधनाध्यक्षाक्षरान्वितम् ॥

एवंविधं राजकृतं शासनं समुदाहृतम् ।

देशादिकं यस्य राजा लिखितेन प्रयच्छति ॥

सेवासौख्यादिना तुष्टः प्रसादलिखितं तथा ।

पूर्वोत्तरक्रियावादर्निर्णयान्ते यदा नृपः ।

प्रदद्याज्जयिने लेख्यं जयपत्रं तदुच्यते ॥

सग्रहचारिणे=अमुकशाखाध्यायिने । सर्वभागविवर्जितम्=सकलराजपु-  
रुषादिदेयांशरहितम् ।

योगीश्वरः शासनमाह— (अ०१)

भूमिं दत्त्वा निबन्धं वा कृत्वा लेख्यं तु कारयेत् ।

आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय पार्थिवः ॥ (३१८)

पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिह्नितम् ।

अभिलेख्यात्मनो वंध्यानात्मानं च महीपतिः ॥ (३१९)

प्रतिग्रहपरीमाणं दानच्छेदोपवर्णनम् ।

स्वहस्तकालसम्पन्नं शासनं कारयेत् स्थिरम् ॥ इति । (३२०)

इयति पर्णक्रमुक्तभारादावियन्ति पर्णक्रमुकादीन्यस्मै देयानीति

राज्ञो नियतदानाज्ञा निबन्धः। कारयेत् सन्धिविग्रहाद्यधिकारिद्वारेत्यर्थात् ।  
तथा च व्यासः—

राज्ञा तु स्वयमुद्दिष्टः सन्धिविग्रहलेखकः ।

ताम्रपट्टे पट्टे वापि प्रलिखेद्राजशासनम् ॥ इति ।

प्रतिगृह्यत इति प्रतिग्रहो भूम्याविस्तत्परीमाणं प्रतिग्रहपरीमाणम् । उप-  
सर्गस्य दीर्घो बाहुलकः । दीयत इति दानम्=भूम्यादि तस्य च्छेदः=  
क्षेत्रादेर्मर्थ्यादा तदुपवर्णनं=तन्निर्देशम् । आत्मवन्ध्यादीनभिलेख्येत्य-  
न्वयः । इदं च साधुशब्दैरेव लेखनीयं न लौकिकवत्तदनियमः । तथा च  
सङ्ग्रहकारः—

राजस्वहस्तचिह्नेन राजादेशेन संयुतम् ।

युक्तं राजाभिधानेन मण्डितं राजमुद्रया ॥

सुलिप्यनपशब्दोक्तिसम्पूर्णावयवाक्षरम् ।

शासनं राजदत्तं स्यात् सन्धिविग्रहलेखकैः ॥

अन्तिमपदोत्तरं लिखितमिति शेषः । तस्मिन्निव लौकिके देशभा-  
षादिप्रतिषेधो नेत्याह—

नारदः,

देशाचाराविरुद्धं यद्यक्ताधिविधिलक्षणम् ।

तत्प्रमाणं स्मृतं लेख्यमविलुप्तक्रमाक्षरम् ॥ इति ॥

( व्य० प० १ श्लो० १३६ )

शासने राजा स्वहस्तेनैव स्वसम्मतं लेख्यमित्यप्याह—

व्यासः,

सन्निवेशं प्रमाणं च स्वहस्तेन लिखेत्स्वयम् ।

मतं मेऽमुकपुत्रस्य अमुकस्य महीपतेः ॥

सन्निवेशं प्रमाणं चेत्यस्य पूर्ववाक्ये प्रलिखेदित्यत्रान्वयः ।  
तथो राजस्वहस्तलिखनानियमात् । इदं च राजा प्रतिग्रहीत्रे समर्पणी-  
यमित्याह विष्णुः—

पट्टे च ताम्रपट्टे वा लिखितं स्वमुद्राङ्कमागामिनृपतिपरिज्ञानार्थं  
दद्यादिति ।

अत एव दत्तापहारदोषप्रतिपादनमपि भाविनृपप्रत्यायनार्थं तत्रा-  
वश्यकमित्यप्याह—

व्यासः,

षष्टिवर्षसहस्राणि दानाच्छेदफलं तथा ।

आगामिनृपसामन्तबोधनायामिलेखयेत् ॥ इति ।

१९ वी० मि०



## १४६ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

षष्टिवर्षसहस्राणीत्यादि पुराणवचनप्रसिद्धम् । दानाच्छेदयोः दानाप-  
हारयोः स्वर्गादिनरकादि फलं लेख्येद्राजेत्यर्थः । जयपत्रे विशेषमाह—  
व्यासः,

व्यवहारान् स्वयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वा प्राङ्बिवाकतः ।

जयपत्रं ततो दद्यात् परिज्ञानाय पार्थिवः ॥

जङ्गमं स्थावरं येन प्रमाणेनात्मसात्कृतम् ।

भागभिशापसन्दिग्धे यः सम्यग्विजयी भवेत् ॥

तस्य राज्ञा प्रदातव्यं जयपत्रं सुनिश्चितम् ।

पूर्वोत्तरक्रियापादं तत्प्रमाणं परीक्षणम् ॥

निगदस्मृतिवाक्यं च यथासंभ्यविनिश्चितम् ।

एतत्सर्वं समासेन जयपत्रेऽभिलेखयेत् ॥ इति ।

प्रमाणस्य पृथक्ग्रहणात्क्रियापदेन प्रत्याकलितमत्र गृह्यते । परिज्ञाना-  
य=प्राङ्ब्यायस्य बोधनाय । भागेऽभिशापे वा सन्दिग्धे । विवादपद-  
मात्रोपलक्षणमेतत् । तेन विवादविषयो यो यत्र विवादे स तत्र लेख-  
नीयः । जयपत्रं राजमुद्राङ्कितं कार्यमित्याह—

वृद्धवाशिष्ठः,

यथोपन्यस्तसाध्यार्थसंयुक्तं सोत्तरक्रियम् ।

सावधारणकं चैव जयपत्रकमुच्यते ॥

प्राङ्बिवाकादिहस्ताङ्कं मुद्रितं राजमुद्रया ।

अत्र च राज्ञः सभ्यानां च स्वहस्तोऽप्यपेक्षित इत्याह—

कात्यायनः—

सिद्धेनार्थेन संयोज्यो वादी सत्कारपूर्वकम् ।

लेख्यं स्वहस्तसंयुक्तं तस्मै दद्यान्तु पार्थिवः ॥

सभासदश्च ये तत्र स्मृतिशास्त्रविदः स्थिताः ।

यथा लेख्यविधौ तत्र स्वहस्तं दद्युरेव ते ॥

कचित्पश्चात्काराख्योऽपि जयपत्रमेव उक्तस्तेनैव—

अनेन विधिना लेख्यं पश्चात्कारं विदुर्बुधाः ।

निरस्ता तु क्रिया यत्र प्रमाणेनैव वादिना ॥

पश्चात्कारो भवेत्तत्र न सर्वासु विधीयते ।

अन्यवाद्यादि हीनेभ्य इतरेषां प्रदीयते ॥

वृत्तानुवादसंसिद्धं तच्च स्याज्जयपत्रकम् । इति ।

वशिष्टेन तु राजपत्रस्य लक्षणाभिधानपूर्वकं तस्य चातुर्विध्यमुक्तम्—

राज्ञः स्वहस्तसंयुक्तं स्वमुद्राचिह्नितं तथा ।

लेख्यनिरूपणे पूर्वलेख्यनाशे लेख्यान्तरकरणम् । १४७

राजकीयं स्मृतं लेख्यं सर्वेष्वर्थेषु साक्षिमत् ॥

शासनं प्रथमं ज्ञेयं जयपत्रं तथाऽपरम् ।

आज्ञाप्रज्ञापनापत्रं राजकीयं चतुर्विधम् ॥ इति ।

आज्ञाप्रज्ञापनापत्रयोः स्वरूपमुक्तं तेनैव—

सामन्तेष्वथ भृत्येषु राष्ट्रपालादिकेषु च ।

कार्यमादिश्यते येन तदाज्ञापत्रमुच्यते ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमान्यष्वभ्यर्चितेषु तु ॥

कार्यं निवे(१)द्यते येन पत्रं प्रज्ञापनेति तत् ॥ इति ।

लेख्यप्रयोजनमाह मरीचिः—

स्थावरे विक्रयाधाने विभागे दान एव च ।

लिखितेनाप्नुयात्सिद्धिमाविसंवादमेव च ॥

सिद्ध्यते वाचिकोऽप्याधिः स्थावरेषु दशान्दिकः ।

प्रतिग्रहे च क्रीते च नालेख्या सिध्यति क्रिया ॥ इति ।

पूर्वलेख्ये कथञ्चन व्यवहाराक्षमतामुपगते तद्विधमेवापरं लेख्यम-  
धमर्णेनोत्तमर्णाय लिखित्वा देयम् । शासनादौ तथाभूते राजादिद्वारा-  
न्यत्करणायमित्याह—

योगीश्वरः,

देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा ।

भिन्ने दग्धे तथा छिन्ने लेख्यमन्यत्तु कारयेत् । (२।९।१)

सर्वैरेतैर्विशेषणैर्व्यवहाराक्षमता विवक्षिता । दुष्टलिप्यक्षरपरिलोपे-  
नावाचकतया वा यल्लेख्यं तत्तु दुर्लेख्यम् । नष्टं=सर्वथा नाशमुपगतम् ।  
उन्मृष्टं=मसीदोषादिना मृदितलिप्यक्षरम् । यद्यपि दग्धमपि नष्टमेव त-  
थापि कालमात्रकृता शीर्णता नष्टपदेनात्र विवक्षिता । पत्रान्तरकरणं  
चार्थिप्रत्यर्थिनोः परस्परसम्प्रतिपत्तौ । विमतौ तु देशान्तरस्थपत्रा-  
नयनाय कालो देयोऽध्वापेक्षया व्यवहारो वा प्रवर्त्तनीयः । दुर्लेख्यादौ  
तु सम्प्रतिपत्तौ पत्रान्तरकरणमन्यथा व्यवहारप्रवृत्तिरेवैव्यवसेयम् ।  
साक्षिषु सत्सु तैरेव निर्णयः ।

तथा च नारदः—

लेख्ये देशान्तरस्थे तु शीर्णे दुर्लिखिते हृते ।

सतस्तत्कालकरणमसतो द्रष्टृदर्शनम् ॥ इति ।

( व्य० प० १ श्लो० १४६ )

## ६४८ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

सतो विद्यमानस्य लेख्यस्यानयनाय कालकरणम् । असत इत्यना-  
दरे षष्ठी । तद्विनापीत्यर्थः । प्रथमः साक्षिणस्तैर्दर्शनं निर्णयः कार्यः ।  
तच्च लेख्यं परीक्ष्यैव प्रमाणीकरणीयमित्याह—

कात्यायनः,

राजा क्रियाः समाहूय यथान्यायं विचारयेत् ।  
लेख्याचारेण लिखितं साक्ष्याचारेण साक्षिणः ॥  
दर्पणस्थं यथाबिम्बमसत्सादिव दृश्यते ।  
तथा लेख्यस्य बिम्बानि कुर्वन्ति कुटिला नराः ॥

व्यासः—

लेख्यमालेख्यवत्केचित् कुर्वन्ति कुशला नराः ।  
तस्मान्न लेख्यसामर्थ्यात्सिद्धिरैकान्तिकी मता ॥

बृहस्पतिः—

ज्ञात्वा देशं च कालं च कुशलाः कूटकारकाः ।  
कुर्वन्ति सदृशं लेख्यं तद्यत्नेन विचारयेत् ॥  
स्त्रीबालार्त्तालिपिज्ञांश्च वञ्चयन्ति स्वबान्धवाः ।  
लेख्यं कृत्वा स्वनामाङ्कं ज्ञेयं युत्त्यागमैस्ततः ॥

कात्यायनः—

साक्षिदोषाज्जवेदुष्टं पत्रं वै लेखकस्य च ।  
धनिकस्यापि वै दोषात् तथा धारणिकस्य च ॥  
दुष्टैर्दुष्टं भवेत्लेख्यं शुद्धैः शुद्धं विनिर्दिशेत् ।  
तत्पत्रमुपधादुष्टैः साक्षिलेखककारकैः ॥  
उपधात्र दुष्टान्तःकरणता ।

स एव—

धनिकेन स्वहस्तेन लिखितं साक्षिवर्जितम् ।  
भवेत् कूटं नचेत्कर्त्ता कृतं हीति विभावयेत् ॥  
देशाचारविरुद्धं यत्सन्दिग्धं क्रमवर्जितम् ।  
कृतमस्वामिना यच्च साध्यहीनं च दुष्यति ॥

नचेदित्यादेरयमर्थः । कर्त्ता लिखनकर्त्ता धनिकाधमर्णसम्प्रतिपत्त्या  
भयैतल्लिखितमिति यदि न विभावयेत्तदा तत् पत्रं कूटं भवेदप्रामाण्य-  
शङ्कास्कन्धितं स्यादिति ।

व्यासः—

अदृष्टं श्रावितं लेख्यं प्रमीतधनिकर्णिकम् ।  
अबन्धलग्नकं चैव बहुकालं न सिध्यति ॥



एतदपवादमाह बृहस्पतिः—

उन्मत्तजडबालानां राजभीतिप्रवासिनाम् ।

अप्रगल्भभयार्त्तानां न लेख्यं हानिमाप्नुयात् ॥

उन्मत्तादीनां लेख्यं तददर्शनादिनापि हानिं नाप्नुयादित्यर्थः ।

बृहस्पतिः—

दुषितो गर्हितः साक्षी यत्रैकोऽपि निवेशितः ।

कूटलेख्यं तु तत्प्रोक्तं लेखको वापि तद्विधः ॥

कात्यायनः—

न लेखकेन लिखितं न दृष्टं साक्षिभिस्तथा ।

एवं प्रत्यर्थिनो लेख्यं कूटलेख्यं प्रकीर्तितम् ॥ इति ।

कूटमप्रामाण्यशङ्काकलङ्कितमित्यर्थः । तस्माद्दुष्टलेख्यपरीक्षाऽवश्या-  
पेक्षणीयेत्यभिप्रायः ।

परीक्षाप्रकारमाह कात्यायनः—

त्रिविधस्यापि लेख्यस्य भ्रान्तिः सञ्जायते नृणाम् ।

ऋणिसाक्षिलेखकानां हस्तोक्त्या साधयेत्ततः ॥

स एव—

अथ पञ्चत्वमापन्नो लेखकः सह साक्षिभिः ।

तत्स्वहस्तादिभिस्तेषां विशुद्धिः स्यान्न संशयः ॥

ऋणस्वहस्तसन्देहे जीवतो वा मृतस्य वा ।

तत्स्वहस्तकृतैरन्यैः पत्रैस्तल्लेख्यनिर्णयः ॥

याज्ञवल्क्यः—

सन्दिग्धलेख्यशुद्धिः स्यात् स्वहस्तलिखितादिभिः ।

युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसम्बन्धागमहेतुभिः ॥ (२।९२)

एतद्देशकालयोरस्येदं द्रव्यं घटत इति युक्त्या प्राप्तिः युक्तिप्राप्तिः ।  
क्रिया=साक्ष्यादि । चिह्नमसाधारणं यस्य यच्छूर्जीकारादि । सम्बन्धः=पूर्व-  
मपि परस्परविश्वासकृतस्तयोर्दानग्रहणादिसम्बन्धः । आगम=एताव-  
तो द्रव्यस्यास्मिन्देहे कालेऽस्य सम्भावितः प्राप्त्युपायः । एतैर्हेतु-  
भिः (१) । हेतुरसाधारणोऽन्यो गोवृषनयेन पृथगेव वा । प्रतिवादिना  
लेख्यदोष उद्भाविते वादिना तत्पुत्रेण वा तदुद्धारः करणीय इत्याह—  
बृहस्पतिः,

उद्धरेल्लेख्यमाहर्त्ता तत्पुत्रो भुक्तिमेव तु ।

अभियुक्तः सभातश्चेत् तत्पुत्रोऽपि तदुद्धरेत् ॥

यत्तु कात्यायनः—

( १ ) सन्दिग्धलेख्यशुद्धिः स्यादिति शेषः ।

साक्षिलेखककर्तारः कूटतां यान्ति ते यथा ।  
तथा दोषाः प्रवक्तव्या दुष्टैर्लेख्यं प्रदुष्यति ॥  
आहर्त्ता भुक्तियुक्तोऽपि लेख्यदोषान् विशोधयेत् ।  
तत्सुतो भुक्तिदोषांस्तु लेख्यदोषानवाप्नुयात् ॥ इति,  
तदनभियुक्तपितृमरणे वेदितव्यम् । दोषानुद्गारे दण्डमाह—  
कात्यायनः,

कूटोक्तौ साक्षिणां वाक्याल्लेखकस्य च पत्रकम् ।  
नयेच्छुद्धिं न यः कूटं स दाप्यो दममुत्तमम् ॥ इति ।  
उत्तमं साहसमिति शेषः । राजशासने निर्णयप्रकारमाह—  
प्रजापतिः,

कार्यो यत्नेन महता निर्णयो राजशासने ।  
राज्ञः स्वहस्ततो मुद्रालेखकाक्षरदर्शनात् ॥  
मुद्रालेखकाक्षरयोर्दर्शनान्निर्णयाद्राजस्वहस्ततश्च निर्णय इत्यर्थः ।  
स्थावरविक्रयबन्धकादौ कूटत्वेन लेख्यं दूषयतो साधयतश्च दोषे शरी-  
रदण्डमाह—

व्यासः,

स्थावरे विक्रयाधाने लेख्यं कूटं करोति यः ।  
स सम्यग्भावितः कार्यो जिह्वापाण्यङ्गिर्वर्जितः ॥

सम्यग्भावितः प्रमाणेन सल्लेख्यत्वमङ्गीकारितः । अनेन कूटलेख्य-  
कर्तुर्भ्रायं दण्डः किन्तु कूटत्वोद्भावनकर्तुरिति गम्यते । तथा च लेख्यं  
परकीयं यः कूटं करोति कूटमेतदिति वदतीत्यर्थः । कूटलेख्यकर्तुस्तु  
दण्डान्तरं वक्ष्यते । ऋणादानादावपि लेख्यदोषमुद्भावयितुस्तदसाधय-  
यतो विषयानुबन्धानुरोधेन दण्डः कल्प्यः ।

लेख्यप्राबल्यमप्याह बृहस्पतिः,

कुलश्रेणिगणादीनां यथाकालं प्रदर्शयेत् ।  
श्रावयेत् स्मारयेच्चैव यथा स्याद्वलवत्तरम् ॥

नारदः,

दर्शितं प्रतिकालं यत् श्रावितं(१) स्मारितं च यत् ।  
लेख्यं सिध्यति सर्वत्र मृतेष्वपि हि साक्षिषु ॥ (ऋणा०प्र०श्लो० १४०)

कात्यायनः—

दृष्टे पत्रे स्फुटं दोषं नोक्तवान्नुणिको यदि ।

ततो विंशतिवर्षाणि स्थितं पत्रं स्थिरं भवेत् ॥  
ऋणिकग्रहणं प्रतिवादिमात्रोफलक्षणम् ।

स एव—

शक्तस्य सन्निधावर्थो यस्य लेख्येन भुज्यते ।  
विंशद्वर्षाण्यतिक्रान्तं तत्पत्रं दोषवर्जितम् ॥  
अथ विंशतिवर्षाणि आधिर्भुक्तः सुनिश्चितः ।  
तेन लेख्येन तत्सिद्धिलेख्यदोषविवर्जिता ॥  
सीमाविवादे निर्णीते सीमापत्रं विधीयते ।  
तस्य दोषाः प्रवक्तव्या यावद्वर्षाणि विंशतिम् ॥  
प्राप्तं वा तेन यत् किञ्चिद्देयं वाथ निरूपितम् ।  
विनापि मुद्रया लेख्यं प्रमाणं मृतसाक्षिकम् ॥  
अपिशब्दो मृतसाक्षिकमित्यत्राप्यन्वेति ।

व्यासः—

स्वहस्तकाज्ज्ञानपदं तस्मात्तु नृपशासनम् ॥  
प्रमाणान्तरमिष्टं हि व्यवहारार्थमागतम् ।  
द्वित्रलिपिज्ञः स्वकृतमन्यलिख्येत युक्तितः ॥  
कुर्याद्विसदृशं लेख्यं तस्माज्ज्ञानपदं शुभम् ।  
अप्रकाशात् साक्षियुक्तं लेखकाक्षरमुद्रितम् ॥  
लोकप्रसिद्धं स्वकृताद्वरमन्यकृतं शुभम् ।  
देशाध्यक्षादिलिखितं यत्र ज्ञानपदं कृतम् ॥  
समकालं पश्चिमं वा तत्र राजकृतं शुभम् ।

संवर्तः—

लेख्ये लेख्यक्रिया प्रोक्ता वाचिके वाचिकी मता ।  
वाचिकी तत्र सिध्येत्सा लेख्यस्योपरि या क्रिया ॥  
लेख्यस्योपरि यत्साक्ष्यं कृतं तदभिधीयते ।  
अधर्मस्य हि तद्द्वारमतो राजा विवर्जयेत् ॥  
वाचिकी यदि सामर्थ्यमक्षराणां विहन्यते ।

क्रियाणां सर्वनाशः स्यादनवस्था च जायते ॥ इति ।

अस्यार्थः । लेख्ये सति लेख्यक्रिया प्रोक्ता सैव बलीयसीत्यर्थः । वाचिके  
साक्षिरूपे प्रमाणे सति वाचिकी क्रिया=साक्षिरूपा क्रिया सैव मता बली-  
यसी । लेख्यस्योपरि या वाचिकी=साक्षिरूपा क्रिया लेख्यानारूढेति यावत् ।  
तत्र सा सिध्येत् । लेख्यस्योपरि यत्साक्ष्यं लेख्यसाधकतयोपन्यस्तमित्यर्थः ।  
अधर्मस्य च तद्द्वारमित्यत्र हेतुर्वाचिकीति । तत्रापि हेतुः क्रियाणामिति ।



## १५२ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

तत्राप्युपपत्तिरनवस्थेति । प्रमादपरिहारमातियत्नेन कृत्वा हि प्रायशो लेख्यं भवति । तेन तत्राप्रामाण्यशङ्कापि नोचिता । साक्ष्यादावपि तत्सम्भवादिति तात्पर्यम् । नतु सर्वथा तत्र साक्ष्यादिनिवर्त्तनमभिप्रेतम् । लेख्यपरीक्षोपदेशविरोधात् ।

इति लेख्यनिरूपणम् ।

अनयोश्च साक्षिलेख्ययोः शब्दाभिव्यञ्जकत्वाच्छब्दप्रमाणेऽन्तर्भावः । तथा हि । यथोक्तगुणवतां दोषरहितानां च साक्षिणामाप्तवाक्यावश्यम्भावात् । आप्तवाक्यस्य च प्रामाण्यात् । तदुभयविशेषणवत्तानिर्धारणायैव साक्षिपरीक्षोपदेशः । आप्तवाक्यस्य च वक्तृज्ञानानुमापकत्वेन स्वातन्त्र्येण वा प्रामाण्यमित्यन्यदेतत् । लेख्यं तु स्वस्य हितकारित्वेन स्वस्मिन्नाप्तत्वात् तद्वचनाभिव्यञ्जकमित्याप्तवाक्यमेव तत्रापि प्रमाणम् । अत एव तत्रानाप्तच्छलकृतत्वशङ्कानिरासाय उन्मत्तादेः स्वहितानभिज्ञतया स्वस्मिन्नप्यनाप्तत्वाच्छङ्कानिरासाय च लेख्यपरीक्षोपदेशोऽप्यर्थवान् ।

अथ भुक्तिः ।

इयं च याज्ञवल्क्यादिभिरेकैव त्रिविधमानुषप्रमाणान्तर्गततयोक्ता ।

प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कर्त्तितम् ।

एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ॥ (अ०२२॥०२२)

इयादिवचनैः । बृहस्पत्यादयो मानुषप्रमाणभेदतयोपन्यस्ते तद्भेदत्रैविध्ये भुक्तियुक्तिचोदनाऽप्रतिकालानाख्यातवन्तः ।

साक्षि द्वादशभेदं तु लिखितं दशधा स्मृतम् ।

अनुमानं त्रिधा भिन्नं नवधा दैविकी क्रिया ॥

इत्युक्त्वा भुक्तियुक्तिचोदनाऽप्रतिकालान् बृहस्पतिर्विवृतवान् । तत्र युक्तिचोदनाऽप्रतिकालयोः प्रमाणान्तरसहकारित्यैव प्रामाण्यम् । भुक्तेस्तु वक्ष्यमाणविशेषणवत्याः स्वत्वहेत्वविनाभावात् स्वत्वानुमापकत्वं स्वत एवेत्यभिसन्धाय योगेश्वरादिभिर्भुक्तिरेव प्रमाणतयोक्ता, अन्येस्तु यथाकथञ्चिदनुमापकतामभिसन्धाय युक्तिचोदनाऽप्रतिकालसङ्ग्रहायानुमानत्वेनैव सोक्तेति सौकर्याय प्रथमपि निरूपयामः । तत्र क्वचित् सागमाया भुक्तेः प्रामाण्यं मनसि सन्दधानः सप्त स्थावरागमोपायान् प्रदर्शयस्तत्र भुक्तेः प्रामाण्यमाह—

बृहस्पतिः

भुक्तिनिरूपणे कचित्सागमाया भुक्तेः प्रामाण्यम् । १५३

एतद्विधानमाख्यातं साक्षिणा लिखितस्य च ।

साम्प्रतं स्थावरे प्राप्ते भुक्तेश्च विधिरुच्यते ॥

विद्यया क्रयबन्धेन शौर्यभार्यान्वयागतम् ।

सपिण्डस्याप्रजस्यांशं स्थावरं सप्तधा कृतम् ॥

पित्र्ये लब्धक्रयाधाने रिक्त्यशौर्यप्रवेदनात् ।

प्राप्ते सप्तविधे भोगः सागमः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ इति ।

स्थावरग्रहणमत्र भुक्तेरावश्यकत्वसूचनाय न तु तत्रैव भोगस्य प्रामाण्यनियमाय । जङ्गमेऽपि तत्सम्भवात् । तदेतदुत्तरत्र विवेचयिष्यामः । विद्यया=प्रतिग्रहादिकप्रयोजकतया । स्वत्वापायः क्रयः प्रसिद्धः । बन्धो=बन्धकं सोपाधिकस्वत्वहेतुर्नष्टाधिविधौ चात्यन्तिकस्वत्वहेतुः । तदप्युत्तरत्र विवेचनीयम् । क्रयबन्धेनेति समाहारद्वन्द्व एकत्वम् । शौर्यागतं=युद्धार्जितम् । भार्यागतं=विवाहकाले प्राप्तम् । अन्वयागतं=पित्रादिक्रमोपात्तम् । अप्रजस्य सपिण्डस्यांशं=रिक्त्यहरान्तराभावे पिण्डदानाद्यधिकारितया प्राप्तम् । पित्र्य इत्यादिना प्रागुक्तानेव सप्त स्थावरागमोपायाननूय तत्र भोगस्य प्रामाण्यं विधीयते । तत्र प्रवेदनं विवाहः ।

स एव—

क्रमागतः शासनिकः क्रयाधानागमान्वितः ।

एवंविधस्तु यो भोगः स तु सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

संविभागक्रयप्राप्तं पितृलब्धं च राजतः ।

स्थावरं सिद्धिमाप्नोति भुक्त्या हानिमुपेक्षया ॥

प्राप्तमात्रं येन भुक्तं स्वीकृत्यापरिपन्थिनम् ।

तस्य तत्सिद्धिमाप्नोति हानिश्चोपेक्षया तथा ॥

अध्यासनात् समारभ्य भुक्तिर्यस्याविघातिनी ।

त्रिंशद्वर्षाण्यविच्छिन्ना तस्य तां न विचालयेत् ॥

अपरिपन्थिनम्=विरोध्यप्रतिबद्धम् । अध्यासनात्=परिग्रहात् ।

नारदः—

आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ।

अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नैव गच्छति ॥

( क्र० प्र० श्लो० ८५ )

आगमस्याविशुद्धत्वं विरोध्यास्कन्दनं भवेत् ।

( इदं ना० स्मृ० न लब्धम् )

व्यासः—

सागमो दीर्घकालश्च विच्छेदोपरवोज्झितः ।

२० वी० मि०

## १५४ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

प्रत्यर्थिसन्निधानश्च परिभोगोऽपि पञ्चधा ॥

विच्छेदोऽन्तरायः उपरव आक्रोशस्ताभ्यामुज्झितो रहितः । यद्वा छे-  
दो व्यवधानं तद्विगमवान् विच्छेदो निरन्तर इति यावत् । अपरवो=वर्जन-  
विषयो रवः । मदीयं क्षेत्रादि त्वया किमिति भुज्यत इति प्रतिषेधः ।  
अपशब्दस्य वर्जनार्थत्वात् । तेनोज्झितः ।

नारदः—

सम्भोगं केवलं यस्तु कीर्त्तयेन्नागमं क्वचित् ।

भोगच्छलोपदेशेन विज्ञेयः स तु तस्करः ॥ ( क्र० प्र० श्लो० ८६ )

इदं सागमस्त्वविशेषणं तदनुपन्यासे दूषणं च स्मरणयोग्यता यत्रा-  
गमस्य तत्र काले बोद्धव्यम् । स च कालः शतवर्षावधिकः “शतायुर्वै-  
पुरुष” इति श्रुतेरिति विज्ञानयोगिनः । पुत्रादिक्रमेणापि स्मरणासम्भवाद्  
यावति काले स्मरणं तावानेव विवक्षितोऽस्मार्त्त इति तु वयम् । अनेना-  
भिप्रायेणाह स एव—

स्मार्त्ते काले क्रिया भुक्तेः सागमा भुक्तिरिष्यते ।

अस्मार्त्तेऽनुगमाभावात् क्रमात्रिपुरुषागता ॥ इति ।

( क्र० प्र० श्लो० ८९ )

भुक्तिः प्रमाणमिति शेषः । अनुगम=आगमाभावनिश्रयः । कल्पतरुका-  
रस्त्वनुगम आगमानुसन्धानमिति व्याचख्यौ । तत् त्वागमाभावनिश्र-  
यस्य बाधत्वेनानुमितिप्रतिबन्धकस्याभाववचनस्यावश्यकत्वादागमानु-  
सन्धानस्य च भोगेनैव क्रियमाणत्वेन तदभावासम्भवाच्च हेयम् ।

याज्ञवल्क्यः—

आगमोऽभ्यधिको भोगाद्विना पूर्वक्रमागतात् । ( १२७ )

पूर्वेषां त्रयाणां क्रमेणागतोऽस्मार्त्तकाल इति यावत् । तस्मात् भो-  
गात् विना स्मार्त्तकालाद्भोगात् आगमो=दानक्रयादिरूपः स्वत्वहेतुरभ्यधिक  
उपजीव्यत्वात् । आगमं विना भोगमात्रात् स्वत्वानुत्पत्तेः । स्मरणयोग्ये  
च काले स्मर्त्तव्यास्मरणरूपया योग्यानुपलब्ध्या तदभावनिश्रये भोगे-  
नागमानुसन्धानमित्यसम्भवात् । अस्मार्त्ते तु तदभावनिश्रयाभावे नि-  
श्चयप्रतिपक्षेण नैरन्तर्यादिविशेषणवता भोगेन स्वत्वहेत्वाक्षेपद्वारा स्वत्वा-  
क्षेप इति तात्पर्यम् । अनेनैवाभिसन्धिनाह—

नारदः,

( १२८ ) अत्योयनापि यद्भुक्तं पित्रा पूर्वतरैस्त्रिभिः ।

न तच्छक्यमपाहर्तुं क्रमात्रिपुरुषागतम् ॥ ( व्य० प० १ श्लो० ९३ )

पूर्वतरैस्त्रिभिः सह पित्रा भुक्तमन्यायेनापि यदि किमुतान्यायानि-



श्रये तदपाहर्तुं न शक्यमर्थिना । स्वाध्यक्षं निराक्रोशनिरन्तरोपभोगे  
सति तस्य निरुत्तरत्वात् । अत्र च सर्ववचनेषु त्रिपुरुषागतत्वं भोगस्य  
स्मार्त्तकालीनत्वोपलक्षणं न तु यथाश्रुतम् । स्मरणयोग्येऽपि द्वितीया-  
दिवर्षरूपे काले पुरुषत्रयात्ययसम्भवात् । तत्र च बाधेनानुमित्यर्थाप-  
ह्योरनुदयात् । इदमेवाभिप्रेत्याह—

व्यासः,

पिता पितामहो यस्य जीवेच्च प्रापितामहः ।  
त्रयाणां जीवतां भोगो विज्ञेयस्त्वेकपुरुषः ॥  
पितामहेन भुक्तस्य तत्पुत्रेण विना च तम् ।  
तौ विना यस्य पित्रा च तस्य भोगस्त्रिपुरुषः ॥

कात्यायनोऽपि—

मुख्या पैतामही भुक्तिः पैतृकी चापि संमता ।  
त्रिभिरेतैरविच्छिन्ना स्थिरा षष्ठ्याब्दिका मता ॥

व्यास एव—

वर्षाणि विंशतिर्भुक्ता स्वामिनाऽव्याहता सती ।  
भुक्तिः सा पौरुषी भूमेर्द्विगुणा च द्विपौरुषी ॥  
त्रिपौरुषी च त्रिगुणा न तत्रान्वेष्य आगमः ॥

भुक्ता भुक्तिः पाकं पचतीतिवत्प्रत्ययानुग्रहाय धातोर्नुवादः । त-  
त्रागमस्तादृशभोगेनैवाक्षिप्यते । आगमाभावनिश्रये तु सर्वत्र भोगो  
निष्फल एव ।

अनागमं तु यो भुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि ।  
चौरदण्डेन तं पापं दण्डयेत् पृथिवीपतिः ॥

( ना०स्मृ०अ०प०१श्लो० ८७ )

न च यो भुङ्क्ते इत्येकवचनश्रवणादेकपुरुषोपभोग एतद्दण्डविधान-  
मनेकपुरुषोपभोगे तु भोगस्य प्राबल्यमिति वाच्यम् । द्वितीयादावप्या-  
गमाभावनिश्रये भोगस्याप्रयोजकत्वात् । इदमेवाभिप्रेत्याह—

नारदः,

आदौ तु कारणं दानं मध्ये भुक्तिस्तु सागमा ।  
कारणं भुक्तिरेवैका सन्तता या चिरन्तनी ॥ (१)

यदपि वचनम्—

यद्विनागममत्यन्तं भुक्तं पूर्वैस्त्रिभिर्भवेत् ।  
न तच्छक्यमपाहर्तुं क्रमात्रिपुरुषागतम् ॥ इति ।

## २५६ वीरभिन्नोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणम्

तदपि अत्यन्तम्=उपलभ्यमानम् आगमं विना आगमाभावेनिश्चया-  
भाव इति व्याख्येयम् ।

ननु स्मार्त्ते काले सागमत्वं भुक्तिविशेषणमसम्बद्धम् । सि-  
द्धे प्रमाणान्तरादागमे तेनैव स्वत्वसिद्धौ भोगस्य विशेष्यांश-  
स्यानुमानार्थापत्त्योरनुपयोगात् । असिद्धे विशेषणासिद्धेरिति चेत्,  
न । प्रमाणान्तरसिद्धागमसहित एव विशेषणान्तरविशिष्टो भोगः का-  
लान्तरे स्वत्वमवगयति, भोगरहितोऽवगतोऽप्यागमः साक्ष्यादिभिर्न  
कालान्तरे स्वत्वमवगमयितुमीष्टे मध्ये दानक्रयादिना स्वत्वापगम-  
सम्भवादिति विशेषणविशेष्ययोर्द्वयोरपि नानर्थक्यमसिद्धिर्वा । इदमि-  
दानीं मम स्वमिति साध्ये स्वत्वभागे आगमस्तत्र तस्येदानीं पर्यन्तमन-  
नुवृत्तौ भोग इति निगर्वः । याज्ञवल्क्यादिभिः सर्वप्रकारकानुपभोगे पूर्ण-  
स्वत्वोत्पादकता दानाद्यागमस्य नास्तीत्युक्तम् ।

आगमेऽपि बलं नैव भुक्तिः स्तोकापि यत्र नो ।

( या० अ० २ श्लो० २७ )

बलं=पूर्णता ।

नारदः—

विद्यमानेऽपि लिखिते जीवत्स्वपि हि साक्षिषु ।

विशेषतः स्थावराणां यत्र भुक्तं न तत् स्थिरम् ॥

( व्य० प० १ श्लो० ७७ )

दानविक्रयादेरुपभोगनिरपेक्षस्यैव स्वत्वोत्पादकत्वात् किमिति  
भोगलवोऽप्यवश्यं तत्रापेक्ष्यत इत्याशङ्क्यायामुपपत्तिरुक्ता विज्ञानेश्वराचा-  
र्यैः । दानादेः परस्वत्वापादने परकर्तृकस्वीकारापेक्षाऽवश्यम्भावि-  
नी । स्वीकारश्च त्रिविधो मानसो वाचिकः कायिकश्च । ममेदमित्य-  
ध्यवसायो मानसः । ममेदमित्याद्यभिलापो वाचिकः । उपादानाभिमर्शना-  
दिरूपेणानेकप्रकारकः कायिकः । तत्र मानसं विना स्वत्वासम्भवात् स  
तावदावश्यक एव । दानविशेषपुरस्कारेण शब्दप्रयोगविशेषनियमोपा-  
दानाभिमर्शनादिचेष्टाविशेषनियमाच्च वाचिककायिकावप्यावश्यकवि-  
त्यवसीयते । तत्र हिरण्यवस्त्रादौ दातृकर्तृकजलत्यागादनन्तरमेव प्रति-  
ग्रहीतुरुपादानादिसम्भवात् त्रिविधोऽपि व्यापारः सम्पद्यते । क्षेत्रादौ  
तु फलोपभोगं विना कायिकस्वीकारासम्भवादल्पेनाप्युपभोगेनाव-  
श्यम्भावितव्यमन्यथा दानक्रयादेः सम्पूर्णता न भवत्युत्तरकालीनस्वी-  
काराभावात् । तेन तत्सहितादागमान्तराद्विकल आगमो दुर्बलो भव-  
ति । एतच्च द्वयोरगमयोः पूर्वापरभावानवगमे । तदवगमे तु स्वल्प-

भुक्तिनिरूपणे कचित् भूमेर्हिरण्यादेश्च स्वाम्यहानिः । १५७

भोगविकलोऽपि प्राक्तन एवागमो बलवान् । पूर्वेण दानादिना स्वत्वा-  
पगमे दानाद्यन्तरासम्भवात् । नचैवं तस्य क्षेत्रादेर्मध्यमत्वापत्तिः । पूर्व-  
स्याप्यागमादुत्तरस्वाम्यानुत्पत्तेश्चेति वाच्यम् । प्रतिश्रुतन्यायेनापेक्ष-  
णीयस्वत्वस्य सत्त्वात् । पूर्वस्वाम्यसत्त्वेऽपि राज्ञैव प्रतिग्रहीत्रादेः  
कायिकस्वीकारस्य निष्प्रतिपक्षस्य सम्पादनीयत्वात् । अथवा साक्षादे-  
वानेन योगीश्वरचवनेन साक्ष्यादीनामुक्तानां मानुषप्रमाणानां बलाबल-  
मुच्यते । पूर्वव्याख्याने त्वार्थिकम् । द्वितीयव्याख्याने चेत्यम्-आद्ये  
पुरुषे साक्षिलेख्याभ्यां भावित आगमो भोगादधिको बलवान् । तेन  
भुक्तिः साक्षिलेख्ययोस्तत्र बलवत्त्वमुक्तं भवति । पूर्वक्रमागतस्तु भो-  
गो विनापि भावितादागमाच्चतुर्थे पुरुषेऽधिको मध्यमे तु पुरुषे भोग-  
रहितागमात् स्तोत्रभोगसहितोऽप्यागमो बलवानिति । स्पष्टञ्चेदम्  
“आदौ तु कारणं दानम् ” इत्युदाहृते नारदवाक्ये ।

प्रथमपुरुषेऽपि स्वाम्यनुपभोगेन समक्षनिराक्रोशपरोपभोगेन क्षेत्रा-  
दिभूमेर्हिरण्यादेश्च कियताचित्कालेन स्वाम्यहानिः पूर्वस्वामिन इत्याह-  
याज्ञवल्क्यः,

पश्यतोऽब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ।

परेण भुज्यमानस्य धनस्य दशवार्षिकी ॥ ( २। २४ )

मनुनारदौ—

(१)यं कश्चिद्दशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ।

भुज्यमानं परैरर्थं (२)न स तं लब्धुमर्हति ॥ (ना०व्य०प० १श्लो०७९)

( मनु० ८।१४७ )

व्यासः—

उपेक्षिता यथा धेनुर्विना पालेन नश्यति ।

पश्यतोऽन्यैस्तथा भुक्ता भूमिः कालेन हीयते ॥

वर्षाणि विंशतिर्यस्य भूभुक्ता तु परैरिह ।

सति राज्ञि समर्थस्य तस्य सेह न सिद्ध्यति ॥

नारदः—

भुज्यमानान् परैरर्थान् यः स्वान्मोहादुपेक्षते ।

रुमक्षं जीवतोऽप्यस्य तान्भुक्तिः कुरुते वशम् ॥

(व्य०प० १श्लो०७८)

पश्यतो ब्रुवत इत्यादि षष्ठ्यनादरे ।

( १ ) यात्किञ्चिदिति पाठान्तरम् । ( २ ) परैस्तूष्णीं न स तदिति पादोऽपि ।



## १५८ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणम्०

बृहस्पतिः—

ऋक्थिभिर्वा परैर्द्रव्यं समक्षं यस्य दीयते ।

अन्यस्य भुञ्जतः पश्चान्न स तल्लब्धुमर्हति ॥

पश्यन्नन्यस्य ददतः क्षितिं यो न निवारयेत् ।

सतापि लेख्येन भुवं न पुनस्तां समाप्नुयात् ॥

एतेषु वचनेषु विंशतिवर्षावधिकस्वामिसमक्षनिराक्षेपभोगनिबन्धनां भूमेर्हानिर्दशवर्षावधिकतादृशपरोपभोगनिबन्धना च हिरण्यादिधनस्य हानिरित्यर्थः प्रतीयते । सा न तावत् स्वत्वहानिः । दर्शनकालीनाप्रतिषेधस्य दानादिवत्स्वत्वनिवर्तकत्वस्य लोकाप्रसिद्धत्वात् । उपभोगस्य च तादृशस्य स्वत्वं प्रति प्रमाणत्वेन प्रमाणस्य प्रमेयं प्रति ज्ञापकत्वेन स्वत्वरूपाजनकतया स्वत्वोत्पादकत्वाभावात् । स्वत्वस्य तदुत्पत्तिनिवृत्तिहेतूनां च लौकिकत्वस्य दायभागप्रस्तावे विस्तरेणोपपादयिष्यमाणत्वात् । गौतमादिभिस्तदुभयकथनस्य लोकप्रसिद्ध्यनुवादात् । अनागमभोगस्य नारदवचनेन पूर्वादाहतेन “अनागमं तु” इत्यादिना स्वत्वहेतुताया निरस्तत्वाच्च ।

अत्राहापरार्कः—व्यवहारस्थितिमाश्रित्येदमुच्यते न(१) धर्मगतिमिति परस्वापहारप्रत्यवायभीरुणा परेण पूर्वस्वामिने तदर्पणीयम् । सभापतिसभ्यादीनां व्यवहाररीत्या तत आच्छिद्य तददानेऽपि न क्षतिः । अत एव—

मनुः,

अजडश्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते ।

भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्धनमर्हति ॥ (८१४८)

व्यवहारेण भोक्तार्हतीति व्यवहारस्थितिमेवोक्तवान् । बृहस्पतिरपि “सतापि लेख्येन” इत्याह । “अनागमम्” इत्यादि नारदवचनं तु बहुतरधनभूमिविषयमेकपुरुषनियमाभावादिश्रयविषयं वा । अत एव योगीश्वरः—“आगमस्तु कर्तो येन” इत्युक्तवान् । तस्मात् “निन्दुते लिखितम्” इत्यादि वचनेन यथा यथापेक्षिततर्कसहकृतेनैकदेशसाधनेऽन्यैकदेशदापने निवेदितैकदेशस्य प्रागनिवेदितस्यादापनेऽपि न व्यवहारदर्शिनां दोषस्तथाप्रापीति ।

तदयुक्तम् । “छलं निरस्य” इत्यादिना व्यवहारदर्शिनामप्येतादृशविषये दोषावर्जनीयत्वात् “निन्दुते” इत्यादिवदत्र सत्तर्काभा-

भुक्ति० “पश्यतोऽब्रुवत” इत्यादेः स्वत्वहानिपरत्वव्यवस्था० १५९

वाच्य । अस्मदुपपादितरीत्या तत्रापि तथानभ्युपगमाच्च । तच्च प्रपञ्चितं विशेषपरिभाषाप्रस्तावे । एवंविधा हि भुक्तिस्तूष्णीम्भूतस्य पश्यतः स्वामित्वे सति न घटते किन्तु भोक्तुरेव स्वामित्वे सति युज्यते इति भवति तत्र भुक्तिः प्रमाणमिति पूर्वं स्वयमेव स्वामिस्वत्वहानिपरस्वत्वोत्पात्तिपरत्वव्याख्याननास्य विरोधाच्च । न च तदप्येतदनुग्राहकतर्कप्रदर्शनेन व्यवहारस्थितिपरमेव न वस्तुगतिपरम् । व्यवहारहानिश्च भोक्ता यद्येवमुपन्यस्यति—अजडोऽयमपौगण्डोऽयमेतत्समक्षं मया भुज्यमानं क्षेत्रादि यद्येतदीयमनेन कुतो विंशतिवर्षावाधि न प्रतिषिद्धम् अस्मिंश्चार्थं गुणोपेता बहवः साक्षिणः सन्तीति, तथोपन्यस्ते चायं निरुत्तरतोऽवश्यम्भवतीति वाच्यम् । अस्य सत्कर्तृत्वाभावात्, आगमप्रमाणानुपन्यासेन मूलशैथिल्यात् । उपेक्षाहेत्वभावकृतव्यग्रहरहानावपि वस्त्वनुसरणस्यावश्यकत्वात् । तथा च नारद उपेक्षालिङ्गभावकृतमेव व्यवहारहानिमाह न वस्त्वभावकृतम् ।

उपेक्षां कुर्वतस्तस्य तूष्णीम्भूतस्य तिष्ठतः ।

काले विपक्षे पूर्वोक्ते व्यवहारो न सिध्यति ॥ इति ॥ (१)

न च निरुत्तरताप्रयुक्तव्यवहारहानिशङ्कानिरासाय प्रत्यक्षं स्वीये वस्तुनि परेण भुज्यमाने तूष्णीं न स्थेयमित्युपदेशार्थमिदं वचनं हीनादिलक्षणवदिति वाच्यम् । विंशत्यादिग्रहणस्यैवमानार्थक्यप्रसङ्गात् । ततोऽर्वांगपि व्यवहारहानिशङ्कायास्तुल्यत्वात् । लेख्यदोषोद्भावनमुत्तरकाले न कार्यं ततोऽर्वाङ्क्तु कार्यमित्येतदर्थं तद्ग्रहणमिति चेत्, न । आध्यादिष्वपि विंशत्याद्युत्तरकाले तदनुद्भावस्य तुल्यतयैतदपवादत्वेनोत्तरवाक्यासङ्गतेः । तच्च लेख्यप्रस्तावेऽभिहितम् ।

अत्र मिताक्षराकाराः—न वस्तुहानिर्न व्यवहारहानिरनेन वचनेन प्रतिपाद्यते । किन्तु परकृतसमक्षभोगेऽप्रतिषेधलक्षणस्वापराधप्रयुक्ता क्षेत्राद्युत्पन्ननष्टफलहानिः । विद्यमानफलेऽपि तदीयस्वत्वानपगमात् परस्वत्वानुत्पादाच्च न्यायतस्तद्वस्तु विद्यमानफलसहितमेव लभते यद्यपि स्वामी, तथापि नष्टे फले धर्मिनाशादेव स्वत्वापगमाभिष्क्रयद्वारेण चौरादिव भोक्तुः सकाशात् तद्ग्रहणं प्राप्तमुपेक्षारूपापराधान्न भवति । परस्वोपभोगलक्षणापराधनिबन्धनो राजदण्डस्त्वनपवादाद्भोक्तुर्भवत्येव । “अनागमं तु” इत्यादिनारदवचनात् । परोक्षभोगे साक्रोशे सोपेक्षे

( १ ) अयं श्लोकः ना० स्मृ० व्य० प० १।७९ श्लोकादनन्तरं पुस्तकान्तरपादत्वेन हृत्तो वर्तते ।

समक्षभोगे च नष्टमपि फलं निष्क्रयरूपेण स्वामी लभत एव । “पश्यतोऽब्रुवत” इति वचनात् । विंशतिवर्षेभ्यो भूमेर्दशवर्षेभ्यश्च प्राग्धनस्य नष्टमपि फलं तन्निष्क्रयरूपेण प्राप्नोति विंशतिदशशब्दोपादानादिति ।

अत्रेदं वक्तव्यम् । नष्टफलालाभे प्रतिषेधरूपापराध एव वीजं वचनं वा । नाद्यः । विंशत्यादिवर्षोपभोगवत्ततः प्रागपि समक्षभोगेऽप्रतिषेधापराधस्य तुल्यत्वात् तत्कृतनष्टफलालाभप्रसङ्गे विंशत्यादिग्रहणाविधक्षाप्रसङ्गदोषसाम्यात् । तत्परिहाराय वाचनिकत्वं यदि नष्टफलालाभस्य, तर्हि यथाश्रुतभूम्यादिस्वत्वहानिरेव वचनादस्तु, किं नष्टफलपरतया लाक्षणिक्या । अत एव कल्पतरुत्नाकरस्मृतितत्त्वस्मृतिचन्द्रिकाकारादिभिर्ध्वनस्वरसायात एष एवार्थोऽभ्युपगतः ।

अत्र ब्रूमः । ग्रावता विना वचनमनुपपन्नं तावदेव वचनमस्तके कल्प्यम् । अत एव यथाश्रुतार्थग्रहणे समक्षभोगोपेक्षायां स्वत्वनाशकत्वमुपभोगस्य परकृतस्य तत्कालीनस्य स्वत्वोत्पादकत्वमलौकिकं वचनान्तरविरुद्धं च कल्प्यम् । अस्मन्मते तु नष्टफले धर्मिनाशात् स्वत्वनाशः क्लृप्त एव परस्वत्वोपभोगे चौरादिवन्निष्क्रयरूपेण तत्प्रत्यर्पणमपि लोकप्रसिद्धत्वात् प्रसक्तं विंशतिवर्षाद्युत्तरमपराधविशेषात् स्वामिनस्तदलाभमुखेन प्रतिषिध्यते स एव चास्य दण्डः । इतरत्सर्वं वचनान्तराविरुद्धमेवेति ।

भवदेवस्तु-किमयं विंशतिवर्षाद्यवच्छिन्नोऽप्रतिरवो भोगो वचनाधगतो भोक्तुः स्वत्वं जनयति प्रमापयति वा ? । नाद्यः । याजनादिधनस्य स्वत्वजनकत्वस्य लोकशास्त्रयोरप्रतीतत्वात् । नापि द्वितीयः । लिङ्गतया वा प्रमाकपकत्वमनुपपन्नतया वा ? । न द्वयमपि । ईदृशभोगस्य स्वत्वेन सह कुत्रापि व्याप्तेरगृहीतत्वात् । अत एव न तस्य स्वत्वेन विनानुपपत्तिरपि । तस्या अपि व्याप्तिच्छायापजीवकत्वात् । किञ्चानेन प्राचीनस्वत्वस्य सत एव प्रमापणमानुमानद्वारा तन्निरपेक्षतया वा ? । न तावत् प्रथमः । स्मार्त्तकालीनस्यागमाभावनिश्रये तदनुमापकत्वस्य बाधेनासम्भवात् । प्रमाणान्तरेणागमनिश्चयेऽस्य सिद्धसाधनेनानुमापकत्वाक्षेपकत्वयोरसम्भवात् न द्वितीयः । व्यभिचाराच्च । “अन्यायेनापि यद्भुक्तम्” इतिवचनविरोधाच्च स्वस्यान्यायेन भोगासम्भवात् । किञ्चेयमनुपपन्नता स्त्रीराजादिधनगोचरापि सम्भवतीति तत्र न कदाचिदपि भोगः प्रमाणमिति कुतः । तस्मादेवं वाच्यम् । यद्यं यथोक्तो भोगः पूर्वस्वामिनो भोक्तुद्देशेन त्यागात् तत्स्वत्वध्वंसमर्थापयति अनुमापयति वा । नहि सम्भवति तत्र जहाति, परभोगध्वंस-



भुक्ति० “पश्यतोऽब्रुवत” इत्यादौ प्रदीपकुन्मत् । १६१

शे तस्मिन्वस्तुनि क्षम्यत इति । तथा च तदुद्देशेन त्यक्ते तत्परिग्रह-  
णादेव परस्य तत्र स्वत्वमप्युत्पद्यते । यथा सर्वभूतोद्देशेन त्यक्ते तडा-  
गतोयारामपुष्पफलादाविति नियमात्तदपि भोक्तुः स्वीभवति । स्त्रीराज-  
धनादौ तु नैवम् । स्त्रीणामज्ञत्वादप्रागल्भ्याद्राजधनस्य बहुलतया जडा-  
देरप्रागल्भ्याच्छ्रोत्रियस्य बहुकालीनाध्यापनादिव्यग्रतयाऽऽध्यापनि-  
धिसीमादीनामाधित्वादित एव स्वत्वध्वंसजनकपूर्वस्वामित्यागाऽक-  
ल्पकत्वात् । अतो भूम्यादौ विंशतिवार्षिको गवादौ दशवार्षिको भोगः  
पूर्वस्वामिनः स्वत्वध्वंसे भोक्तुः स्वत्वोत्पत्तौ च प्रमाणम् । यच्च काल-  
वैषम्यं तद्भूम्यादेर्महाफलत्वेन तत्र चिरकालेनैव स्वत्वहानिकल्पन-  
स्योचितत्वात्, द्रव्यान्तराणां चातथात्वादल्पकालेनापि स्वत्वहानिक-  
ल्पनाया उचितत्वादौचित्यसिद्धम् । यच्च भूम्यादावेव कालवैषम्येण  
भोक्तुः स्वत्वजननं तदपि वचनादेव युक्तम् । यथा तदेव जन्म पुत्रस्य  
पितृधने स्वत्वजनकं न तु पुत्र्या इति ।

अत्र प्रदीपकृतः । यत्र हि मत्कृत्येदानीं नात्र फलसम्भावना  
तदधुना तावत्पर एव भुङ्क्तां पश्चादेतत्सकाशात् सफलोपभोगां  
भुवं ग्रहीष्यामीत्याद्यभिसन्धाय भूम्यादिस्वामी तत्र परोपभोगं क्षमते ।  
तत्रापि विंशत्याद्यवधिको भोगोऽस्ति स्वाप्तिनस्तदुद्देशेन त्यागश्च ना-  
स्तीति व्यभिचाराद्देवशभोगस्य पूर्वस्वामिस्वत्वत्यागे प्रामाण्यम् । न  
चात्र पूर्वस्वामिना स्वीयत्यागाभावं प्रतिज्ञाय दिव्यं कार्यम्, तत्र च त-  
द्भङ्गे त्यागनिर्णये परिग्रहात्परस्य स्वत्वं निर्बाधमिति वाच्यम् । यतस्त-  
स्यापि पूर्वभोगसिद्धस्य पूर्वस्वामिपरिग्रहस्य त्यागानवधारणकालीन-  
त्वेन भोक्तुः स्वत्वाजनकतया तद्वैयर्थ्यात् । किञ्च भूस्वामी सचेताः  
किमिति वृथैव तत्र स्वत्वं जह्यात् । न ह्यत्र दृष्टमुद्देश्यं नाप्यदृष्टम्, धर्म-  
शास्त्रोक्तेतिकर्तव्यताविरहात् । महेच्छत्वसुशीलत्वदयालुत्वादिनापि  
न त्यागसम्भवः । स त्यजन्नपि तैरेव हेतुभिः क्षमत इत्यस्यापि सम्भ-  
वात् । नापि यदुद्देशेन यत्त्यज्यते तत्तस्य स्वमिति नियमः । उद्देश्ये-  
नागृहीते व्यभिचारात् । अपि च । त्यागाद्भोक्तुः स्वत्वं स्वरूपसतो ज्ञा-  
नाद्वा । नाद्यः । अदृष्टचरत्वात् । द्वितीये च तज्ज्ञानं भोक्तुः स्वामिवच-  
नात् स्यात् । तथा च तदुद्देशेन मयेदं त्यक्तमिति स्वामिनस्तदभिसन्धिपूर्-  
वकं वचनं ज्ञापकं दानमेवेति । तत एव स्वामिनः स्वत्वध्वंसे कृतमुपेक्षा-  
नुसरणेन । नच यथोक्तक्षमयैव त्यागानुमानम् । अत्यक्तेऽपि सौशील्या-  
दिना क्षमासम्भवात् । नचैवं यथोक्तक्षमया भोक्तुः स्वत्वानुमानमपि  
न स्यात् । पूर्वस्वामिनः स्वत्वसत्त्वेऽपि सौशील्यादिना तस्य अन्यथा

## १६२ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

सिद्धत्वादिति वाच्यम् । तावत्कालं सौशील्यादिना क्षमाया असम्भवसहकृतो भोगो भोक्तुः स्वत्वप्रमापक इति स्मृतिबलादवगतम् । तच्च स्वत्वं पूर्वागमाद्वोत्पद्यतां स्वामिनो भोक्तुर्देहेन तद्वस्तुत्यागाद्वेत्यत्र न नो ग्रह इति ।

अत्र वदामः । प्रदीपकद्विर्यत्सिद्धान्तितं क्षमायास्तावत्कालीनायाः सौशील्यादिहेतुकत्वासम्भवेन सहकृतो भोगो भोक्तुः स्वत्वं प्रमाप्यति । तच्च भोक्तुः पूर्वागमाद्वोत्पद्यतां भोक्तुर्देहेत्यकस्वामिकृतत्यागाद्वेत्यत्र न नो ग्रह इति । तत्र प्रष्टव्यम् । भोक्तुः स्वत्वोत्पादकौ पूर्वागमस्वामिकृतभोक्तुर्देहेत्यकत्यागा प्रमाप्य तावत्कालीनो भोगो भोक्तुः स्वत्वमनुमापयत्यप्रमाप्य वा । नाद्यः । भोक्तुः पूर्वागमसिद्धौ सम्प्रति तत्र स्वामिनः स्वाम्यासम्भवेन तदीयाप्रतिरवधिंशत्यादिवर्षकालीनभोगोपन्यासवैयर्थ्यात् । तेनैव तदनुमानाच्च तद्वैयर्थ्यामिति चेत्, न । तत्र व्यभिचारेणानुमानासम्भवात् । भोक्तुर्देहेत्यकत्यागप्रमापणेऽपि तद्दूषणानपगमात् । न द्वितीयः । पूर्वस्वत्वध्वंसानवगमे भोगसहस्रेणापि स्मर्त्तकालीनेन भोक्तुः स्वत्वानुमानं न । अनुमानबाधात् । स्मर्त्तव्यास्मरणरूपयोग्यानुपलब्धेर्जागरूकत्वात् । यश्चात्र न नो ग्रह इत्यनास्थावादः सोऽप्ययुक्तः । पूर्वागमभोक्तुर्देहेत्यकस्वत्वत्यागयोः फलभेदेन तत्त्वनिर्णयफलके निर्धारणेऽन्यतरनिर्द्धारणस्यावश्यकत्वात् । पूर्वागमो हि यदि भोक्तुरेव सम्प्रति स्वामिमन्यस्याभोक्तुर्मिथ्याभियोगनिबन्धनो दण्डोऽपि स्याच्च केवलं भूधनहानिः । तस्य स्वत्वस्यागमसिद्धौ तदपलापदण्डमात्रं न मिथ्याभियोगित्वनिमित्तो द्विगुणो दण्डः । स्वत्वहानिरुभयपक्षे तुल्या । विंशत्यादिग्रहणाविवक्षाप्रसक्तिश्चोभयपक्षेऽपि कक्षीकरणीया । भोक्तुर्पूर्वागमपूर्वस्वामिकर्तृकभोक्तुर्देहेत्यकत्यागस्य द्वित्रादिवर्षोपभोगस्थलेऽपि सिद्धौ भोक्तुस्वत्वस्यावारणीयत्वात् । भवदेवमताच्च भवन्मतस्य नातीव भेदः । यथोक्तभोगो भोक्तुर्देहेत्यकपूर्वस्वामिकर्तृकत्यागं कल्पयंस्ततस्तत्स्वत्वध्वंसे सति परिग्रहाद्भोक्तुः स्वत्वोत्पत्तिं निर्बाधामादधातीति तमर्थमिदं वचनं बोधयतीति तन्मतम् । तच्च त्वयाप्यभ्युपगतं तावत्कालीनभोगस्य सौशील्यादिहेतुकक्षमाहेतुकत्वासम्भवेन पूर्वस्वामिन इदानीन्तनभोगकर्तुर्देहेत्यकत्यागं विना तदीयपूर्वागमं विनाऽसम्भवान्नोक्तुः स्वत्वनिमित्तत्वेन तदुभयान्यतरानास्थावादमभ्युपगच्छता । तथा च यत्तन्मते नैकान्तिकत्वं त्वया दूषणमापादितं तद्भवन्मतेऽपि तुल्यम् । यच्च सौशील्यादिहेतुकत्वं तावत्कालीनक्षमायां न सम्भवतीत्युक्तं तत्त्वन्मतेऽपि समाधान-

क्षममेवेति । वस्तुतस्तु तावत्कालीनक्षमायाः सौशील्यादिहेतुकत्वात्सम्भवोऽपि न नियतः । अतिसुशीलतादिस्वभावानामाजन्माप्युपेक्षायाः सम्भवात् । वचनमस्तकेऽतिगौरवं चोभयमते तुल्यम् । विज्ञानेश्वरमते त्वतिलाघवमुपपादितमेव । किञ्च स्मार्त्ते काले स्मर्त्तव्यास्मरणरूपया योग्यानुपलब्ध्या भोक्तुरागमाभावनिश्चये पूर्वस्वामिनश्च त्यागाभावनिश्चये तदीयपरिग्रहकृतस्वत्वोत्पत्तिपूर्वस्वामिस्वत्वध्वंसावुभावपि कल्पयितुमशक्याविति मतद्वयमपीदमत्ययुक्तम् ।

यच्चापरमत्र प्रदीपकृद्भिरुक्तम् । आधेरनुपभोगेन यत्रासिद्धिस्तद्विषयं “पश्यतोऽद्भुवत” इत्यादि वचनम् । तेन यत्राधिग्रहीत्राधेयं भूम्यादि न भुज्यते, किन्त्वाघात्रा चिरं भुक्त्वान्यत्राधीयते तत्रोत्तरस्याधिग्रहीतुस्तत्र भूम्यादौ प्रभुत्वं न तु प्रथमस्येति—

आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा ।

इत्येतदपवादार्थमिदमीदृशे विषये वचनम् । तेनात्र द्वितीयस्यैवाधिः सिद्ध्यति । यद्वा हानिपदमुपेक्षितकोटौ विचारकाणामुपेक्षानिमित्ता न्यूनता प्रतिभातीति संशयतादवस्थपरं न तु हानिर्भङ्ग एव । तथा सति “हीनस्य गृह्यते वाद” इत्यादिवचनसिद्धं दण्डमन्तरेणैव पुनर्व्यवहारदर्शनं न घटत इति पुनर्विचारेणैवात्रापि निर्णयः । अत एव “उपेक्षिता यथा धेनुः” “वर्षाणि विंशतिर्यस्या” इत्यादिव्यासवचनयोः पश्यन्तमनादृत्य ये यदीये भूमिधने परैरुपभुज्येते तदीयत्वेन ते ह्रायेते न निश्चीयेते इति व्याख्यानं रत्नाकरकृतापि कृतम् । किञ्च यदि विंशतिवार्षिकी भुक्तिः स्वतो भोक्तुः स्वत्वे प्रमाणं तर्हि तत एव साध्यसिद्धौ “शक्तस्य सन्निधावर्थ” इत्यादिकात्यायनवचनेन यद्भोगस्य लेख्यादिदोषनिराकरणार्थमुक्तं तदपार्थक्यं स्यादिति ।

तदपि चिन्त्यम् । तस्यैतादृगाधिविषयत्वं न प्रकरणार्थतः शब्दतो वावगम्यते । अस्य चाधिविशेषविषयतायामाधिसीमेत्यस्यैतदपवादस्यैतादृगाधिमिश्राधिविषयताप्यशाब्दी कल्प्या । “आधौ प्रतिग्रह” इत्यादेरयमपवाद इत्ययुक्तम् । अतिव्यवहितस्य तस्यात्रानुपस्थितेः । विंशत्यादिवर्षांप्रागपि चैतादृगाधिभोगे परक्रियायाः प्राबल्यस्याप्रतिहतेर्विशत्यादिग्रहणाविवक्षाप्रसक्तिः । वचनं तावत्कालीनैतादृगाधिभोग एव तथेति यदि, तर्हि श्रुतभूमिधनसामान्यातिक्रमेणैतादृगाधिकृततद्विषयत्वस्याशाब्दस्य कल्पनं जल्पनमेव । उपेक्षानिमित्तकविचारकसंशयतादवस्थयापुनर्विचारः कर्त्तव्य इत्येतन्मात्रपरमिदं वचनं न तु सर्वथा भङ्गरूपहानिपरमिति च यदस्य वचनस्य तात्पर्यान्तरवर्णनं, तत्रापि



विंशत्यादितः प्रागपि तादृगुपेक्षाहेतुकसंशयतादवस्थ्यापरिहारात् पुनर्व्यवहारप्रवृत्त्यावश्यकत्वे विंशत्यादिपदार्थाविवक्षाप्रसक्तिर्दुर्वारा । प्रत्युत विंशत्यादिवर्षोत्तरं तादृगुपेक्षायाः पुनर्विचारपुरःसरं निर्णयः कर्त्तव्यः प्राक्तु नेत्यनौचित्यापत्तिश्च । अतः प्राङ्मनोपेक्षककोटिन्यूनताप्रतिभासाश्चिरतरापेक्षायास्तावदेकः स इति न शक्यम् । सत्यां सामग्र्यां प्रागपि तस्य वारयितुमक्यत्वादसत्यां तूत्तरमपि तदसम्भवात् कालविशेषनियमानुपपत्तेः । हानिपदस्यानिश्चयपरता च बहुषु वचनेष्वयुक्तास्मिन् पक्षे प्रसज्यते । यच्चोक्तं तावत्कालीनभोगस्य भोक्तृस्वत्वोत्पात्तिहेतुत्वस्य यथाश्रुतस्याश्रयणे “शक्तस्य सन्निधावर्थ” इत्यादिवचनोक्तं लेख्यादिप्रमाणान्तरस्य स्वत्वसाधकस्य दोषनिराकरणमपार्थक्यं तावद्भोगादेव स्वत्वसिद्धिरिति तादृग्वचनतात्पर्यबीजम् । तदमूलकम् । विज्ञानयोगिव्याख्याने तदनभ्युपगमात् ।

वाचस्पतिस्तु हानिवोधकस्मृतीनां प्रमाणपरिपालनकर्त्तव्यताविधिशेषत्वम् । यस्मादुपेक्षायां हानिशङ्का भवति तस्मात्स्वप्रमाणं सर्वथा परिपालनीयं न तु तत्रोदासितव्यमित्यत्र तात्पर्यम् । अत एव कल्पतरौ हानिवचनानि लिखित्वा प्रमाणपरिपालनमुपसंहृतमित्याह ।

तदपि यद्वा तद्वा । विंशत्यादिग्रहणाविवक्षाप्रसक्तितादवस्थ्यात् । ततः प्रागपि प्रमाणपरिपालनस्यावश्यकत्वात् । हानिशङ्काप्रसक्तितौल्यात् । प्रदेशान्तरस्थविधिशेषत्वानुपपत्तेरत्र च तद्विध्यश्रवणात् । अन्यत्र स्पष्टं तद्विधिसत्त्वेन तदुन्नयनस्याप्यनुपयोगात् । हानिपदेनातत्फलकप्रमाणापरिपालनलक्षणया तत्प्रतियोगिभूतप्रमाणपरिपालनकर्त्तव्यतापरत्वेऽत्यन्तकलिष्टत्वापत्तेश्च । तस्मात् समस्तदोषशून्या विज्ञानयोगिव्याख्यैवास्य वचसो ज्यायसी ।

ननु—

अध्यासनात्समारभ्य भुक्तिर्यस्याविधातिनी ।

त्रिंशद्वर्षण्यविच्छिन्ना तस्य तां न विचालयेत् ॥

इति बृहस्पतिवचने त्रिंशद्वर्षभुक्तेर्हान्यापादकत्वोक्त्या विंशतिवर्षभुक्तेस्तन्यूनवर्षभुक्तेरिव हान्यनापादकत्वमर्थसिद्धमिति योगीश्वरव्यासादिवचनैरस्य विरोधः ? मैवम् । योगीश्वरादिवचनेषु “अब्रुवत” इत्येतावन्मात्राभिधानाद्यत्र विरुद्धं वाङ्मात्रमपि भूमिस्वामिनो नास्ति तत्र विंशतिवर्षभोग एव हानिकारणम् । बृहस्पतिवचने तु अध्यासनात् भूमिपरिग्रहादारभ्य यस्य भुक्तिरविधातिनीत्यविधातिनीपदप्रयोगाद्विधातस्य च कलहताडनादिरूपत्वे न लोके प्रसिद्धेर्वाङ्मात्रविप्रतिपत्तौ सत्यामपि यत्र भोक्त्रा सह पूर्व-

स्वामिना तद्भोगप्रातिरोधकं कलहताडनादि नाचरितं तत्र त्रिशद्वर्ष-  
भोगस्तादृशो हान्यापादक इतिवचनस्वरसेनैव विरोधपरिहारात् ।

मम तु प्रतिभाति । विंशतिवार्षिकीत्यादिहानिविशेषणाद्भूम्याद्युत्पन्न-  
नष्टफलस्य विंशतिवार्षिकादेर्हानिस्तावत्कालीनं तत्फलमुपेक्षालक्षणाद-  
पराधान्न प्राप्नोति । विंशतिदशवर्षेभ्यः प्रागुक्तभोगकालगणनया तदुत्पन्नं  
नष्टमपि फलं निष्क्रयरूपेण लभत एव । विंशत्यादिशब्दोपादानात् अन्य-  
था यावत्कालीनपरकृतभोगोपेक्षा तावत्कालीननष्टफलहानिमेव सामा-  
न्येन वदेत् । एतावता विंशत्यादिग्रहणस्यार्थवत्त्वे विंशत्याद्याधिकवर्षी-  
यफलहानिर्दण्डापूपिकया सिध्यति भुक्तिविशेषणतायामिव विंशत्या-  
दिसङ्ख्यायाः । न चैवं वचनान्तरसंवादायत्तभुक्तिविशेषणत्वव्याख्यातो-  
ऽस्य व्याख्यानस्य न फलतो विशेष इति वाच्यम् । यतो विंशत्यादि-  
ग्रहणस्य भुक्तिविशेषणत्वे कियत्कालीननष्टफलहानिरिति साकाङ्क्षमे-  
वेति । अत एवापराधाभावादाध्यादौ न तद्भानिरपीत्याह--

योगीश्वरः,

आधिसीमोपनिक्षेपजडबालधनैर्विना ।

तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणां धनैरपि ॥ ( २।२५ )

भोग्याधेर्भोगार्थमेवाधीकरणादुपेक्षायामपि न स्वामिनोऽपराधः ।  
गोप्याधौ स्वाम्यनुमतिमन्तरेण भोक्तुरपराधातिशयमापादयितुमेवो-  
पेक्षोपपत्तिः । जडबालयोस्त्वज्ञत्वादेवोपेक्षा । उपनिधुपनिक्षेपयोरपि  
भुक्तेः प्रतिषिद्धत्वात्तदतिक्रमे चोपनिक्षेपतुरूपनिधातुश्च सोदयतल्लाभा-  
दुपेक्षा । राज्ञोऽनेकराजकार्यव्यग्रत्वात्, स्त्रीणामप्रागल्भ्यानभिज्ञत्वाभ्यां  
श्रोत्रियस्याध्ययनाध्यापनतदर्थविचारश्रौतस्मार्त्ततत्तत्कर्मानुष्ठानव्यस्त-  
तयेति सर्वत्र स यथायथमपराधविशेषसमाधानसहकृतादस्माद्वच-  
नादत्र कदाचिन्नष्टोपचयहानिरपि भवतीत्यर्थः । अत एवाध्यादिभोगे  
दण्डमाधिकमाह—

स एव,

आध्यादीनां विहर्त्तारं धनिने दापयेद्धनम् ।

दण्डं च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्षमथापि वा ॥ ( २।२६ )

एतत्तत्प्रस्तावे विवेचयिष्यामः । क्वाचिदन्यत्रापि नष्टफलहान्यप-  
वादो मनुनोक्तः—

सम्प्रतिष्ठा भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ।

धेनुरुष्ट्रो वहन्नद्वो यश्च दम्भ्यः प्रयुज्यते ॥ ( ८।१४६ )

दम्भ्यो=दमनार्थं यः प्रयुज्यते ।

# १६६ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

मनुनारदौ—

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधी स्त्रियः ।

राजस्वं श्रोत्रियस्वं च नोपभोगेन नश्यति ॥ ( मनु०८।१४९ )

( नार० ऋणा० प्र० ८१ )

नारदः—

अन्वाहितं हृतं न्यस्तं बलावष्टब्धयाचिते ।

अप्रत्यक्षं च यद्भुक्तं षडेतान्यागमं विना ॥ ( ऋणा० प्र० ९२ )

अन्वाहितम्=एकत्राहितमन्यत्र पुनराहितम् । बलावष्टब्धं=राजादिवला-  
वष्टम्भेन स्थापितम् । इतरत्प्रसिद्धम् ।

बृहस्पतिः—

भुक्तिस्त्रैपुरुषी सिद्धेदपरेषा न संशयः ।

अनिवृत्ते सपिण्डत्वे सकुल्यानां न सिद्ध्यति ॥

अस्वामिना तु यद्भुक्तं गृहक्षेत्रापणादिकम् ।

सुहृद्वन्धुसकुल्यस्य न तद्भोगेन हीयते ॥

विवाह्यश्रोत्रियैर्भुक्तं राज्ञामात्यैस्तथैव च ।

सुदीर्घेणापि कालेन तेषां सिद्धेन तद्धनम् ॥

.....वित्तापनयनेषु च ।

बालश्रोत्रियवित्ते च प्राप्ते च पितृतः क्रमात् ॥

नोपभोगे बलं कार्य्यमाहर्त्रा तत्मुतेन वा ।

पशुस्त्रीपुरुषादीनामिति धर्मो व्यवस्थितः ॥

भोगं न कल्पयेत्=प्रमात्वेन नाद्रियेतेत्यर्थः ।

गौतमः—

अजडापौगण्डधनं दशवर्षभुक्तं परैः सन्निधौ भोक्तुर्न श्रोत्रियप्रव्रजि-  
तराजपुरुषैः । पशुपुरुषस्त्रीणामनतिभोगः । अतिभोगे तद्भानिरेवेत्यर्थः ॥

कात्यायनः—

सनाभिभिर्बान्धवैश्च भुक्तं यत् स्वजनैस्तथा ।

भोगात्तत्र न सिद्धिः स्याद्भोगमन्येषु कल्पयेत् ॥

अन्येषु=असंबद्धेषु । सर्वत्रोपभोगे सकुल्यत्वाद्यनुरोधेन शीलादेरु-  
पेक्षाहेतोः सम्भवान्न भोगस्यान्यथोपपन्नस्य स्वत्वहेतुकल्पनद्वारा स्व-  
त्वसाधकत्वं नाप्युपचयहानिहेतुत्वमिति तात्पर्य्यम् । कचिदेकदेशोप-  
भोगेन समस्तसिद्धिमाह—

बृहस्पतिः,

यद्येकशसने ग्रामे क्षेत्रारामाश्च लेखिताः ।



एकदेशोपभोगेऽपि सर्वे भुक्ता भवन्ति ते ॥

“आगमेऽपि बलं नैव भुक्तिः स्तोकापि यत्र नो” इत्यस्यायमप-  
वादः । एकशासनपत्रारूढेषु किञ्चिदुपभोगेऽपि शासनारूढभोगस्या-  
नपेतत्वाच्च प्रत्येकभोगापेक्षेत्याशयः । विच्छिन्नभोगनिर्णयोपायमाह—  
बृहस्पतिः,

छिन्नभोगे गृहे क्षेत्रे सन्दिग्धं यत्र जायते ।  
लेख्येन भोगविद्भिर्वा साक्षिभिः शुद्धिमाहरेत् ॥  
नामाघाटागमं सङ्ख्यां कालं दिग्भागमेव च ।  
भोगच्छेदनिमित्तं च ये विदुस्तत्र साक्षिणः ॥  
तदुत्पन्नाश्च सामन्ता येऽन्यदेशे व्यवस्थिताः ।  
मौलास्ते तु समुद्दिष्टाः प्रष्टव्याः कार्यनिर्णये ॥  
अदुष्टास्ते तु यद्ब्रूयुः सन्दिग्धे समदृष्टयः ।  
तत्प्रमाणं प्रकर्त्तव्यमेवं धर्मो न हीयते ॥  
स्थावरस्यैतदाख्यातं लाभभोगप्रसाधनम् ।  
प्रमाणहीनवादे तु निर्देष्टव्या दैविकी क्रिया ॥ इति ।  
सीमाविवादनिर्णय एतत्प्रपञ्चं विवेक्ष्यामः ।  
एवं भुक्तिर्निरूपिता ।

युक्तिस्वरूपमाह कात्यायनः,

लिङ्गोद्देशस्तु युक्तिः स्यात् । इति ।

लिङ्गस्य=अग्निदत्वाद्यव्यभिचारिण उल्काहस्तत्वादेः उद्देशो=निश्चयः  
तेन चाग्निदत्वाद्यनुमानम् । यद्यपि भुक्तिरपि निरन्तरत्वनिराक्रोशत्वा-  
दिप्रागुक्तविशेषणोपहितानुमानविधयाऽर्थापत्तिविधया वा साधिकेति  
तत्रापि लक्षणमिदमतिप्रसक्तमेव, वक्ष्यमाणचोदनाऽप्रतिकालेऽपि ।  
तथापि स्मर्तृप्रासिद्धिबलाद्गोवृषवत्ताद्भिन्नलिङ्गोद्देश एव युक्तिरूपत्वेन  
लक्ष्यः । अत एव तत्प्रवृत्तिस्थलं तादृशमेवाह—

नारदः,

असाक्षिप्रत्ययास्त्वन्ये षड्विवादाः प्रकीर्त्तिताः ।  
लक्षणान्येव साक्षित्वे तेषामाहुर्मनीषिणः ॥  
उल्काहस्तोऽग्निदो ज्ञेयः शस्त्रपाणिश्च घातकः ।  
केशाकेशिगृहीतश्च युगपत्पारदारिकः ॥  
कुडालपाणिर्विज्ञेयः सेतुमेत्ता समीपगः ।  
तथा कुठारहस्तश्च वनच्छेत्ता प्रकीर्त्तितः ॥  
प्रत्यक्षाचिन्हैर्विज्ञेयो दण्डपारुष्यकुम्भरः ।

## १६८ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

असाक्षिप्रत्यया ह्येते पारुष्ये तु परीक्षणम् ॥ (ऋणा० प्र० श्लो० १७२।१७३।१७४।१७५ )

साक्षित्वे=साक्षिकार्ये । समीपग इत्यन्यत्रापि सम्बध्यते । तच्चावि-  
नाभावापादकविशेषणान्तरोपलक्षणम् । प्रत्यक्षचिह्नैः शोणिताक्तखड्गा-  
दिभिः । पारुष्ये=वाक्पारुष्ये । परीक्षणं=साक्षिगवेषणम् । यद्यपि गालि-  
दानादिश्रवणं प्रत्यक्षचिह्नं सम्भवति । तथापि प्रथमप्रवृत्त्यादिनिश्चयाय  
साक्ष्याद्यपेक्षेति ध्येयम् ।

शङ्खलिखितौ—

केशाकेशिग्रहणात् पारदारिकः, उल्काहस्तोऽग्निदः, शस्त्रपाणिर्घा-  
तको, लोप्त्रहस्तश्चौरः ।

केशाकेशिग्रहणादिति स्त्रीसङ्ग्रहणे वक्ष्यमाणानामन्येषामपि चिह्नानामु-  
पलक्षणम् । लोप्त्रं=चौर्यप्राप्तं वस्तु ।

बृहस्पतिः—

असाक्षिके चिरकृते पृच्छेदुत्तरसाक्षिणः ।

शपथैर्वानुयुज्जीत उपधां वा प्रयोजयेत् ॥

उपधा=युक्तिरिति कल्पतरौ । शपथाभ्यनुज्ञानमन्यथासिद्धयुक्त्यभावे  
ज्ञेयम् । अत एव नारदः—

युक्तिश्चप्यसमर्थासु शपथैरेतमर्दयेत् । ( प्र० श्लो० २३९ )

अर्दयेत्=पीडयेत् । पराजयेदिति यावत् ।

इति युक्तिः ।

चोदनाप्रतिकालस्वरूपं तु चोदनाया धनदानादिविषयकप्रेरणा-  
या अप्रतिकालोऽप्रतिषेधः । सोऽपि यद्ययमस्य ऋणादिसम्बन्धी न  
स्याद्याच्यमान एनं निराकुर्यादनिराकरणादस्त्यस्यानेन सम्बन्ध इत्य-  
र्थापत्तिविधयाऽनुमानविधया वा ऋणादिसम्बन्धं साधयन् भवति प्र-  
माणम् । इदमेवाभिप्रेत्याह—

कात्यायनः,

अर्थिनाभ्यर्थितो यस्तु विघातं न प्रयोजयेत् ।

त्रिचतुःपञ्चकृत्वो वा परतस्तदणी भवेत् ॥

नारदोऽपि—

अभीक्ष्णं चोद्यमानोऽपि प्रतिहन्यान्न तद्वचः ।

त्रिचतुःपञ्चकृत्वो वा परतोऽर्थं स दाप्यते ॥

( ऋणा० प्र० श्लो० २३७ )

परतः=तदूर्ध्वम् । चोदनाप्रतिकालस्य शीलादिप्रयुक्तस्यापि स-

म्भवाद्युत्त्वादिसहकार्यपेक्षामाह—

नारदः,

चोदनाप्रतिघाते च युक्तिलेशैस्तमन्विध्यात् ।

देशकालार्थसम्बन्धपरिमाणक्रियादिभिः ॥

( कृणा० प्र० श्लो० २३८ )

अत एव तस्य विषयमप्याह स एव—

प्रमादाद्धनिनो यत्र न स्याल्लेख्यं न साक्षिणः ।

अर्थं चापहनुते वादी तत्रोक्तस्त्रिविधो विधिः ॥

चोदनाप्राप्तकालश्च युक्तिलेशस्तथैव च ।

तृतीयः शपथः प्रोक्तस्तैरेनं साधयेत् क्रमात् ॥

( कृणा० प्र० २४६ )

कात्यायनः—

दानं प्रज्ञापनाभेदः सम्प्रलोभक्रिया च या ।

वित्तापनयनं चैव हेतवो हि विभावकाः ॥

एषामन्यतमो यत्र वादिना भावितो भवेत् ।

मूलक्रिया तु तत्र स्याद्भावितो वादिनिहवे ॥

दानम्=उत्कोचदानम् । प्रज्ञापनाभेदः=प्रज्ञापकस्वहस्तचिह्नाद्यन्यथा-  
करणम् । सम्प्रलोभक्रिया=साक्षिसभ्यादिभ्यो लोभप्रदर्शनम् । वित्तापनयनं=  
वित्तगोपनम् । एषामन्यतमो हेतुर्यत्र वादिना=प्रतिवादिना ऽधमर्णादेरु-  
परि भावितः=प्रमाणेन साधितो भवेत्तदा मूलक्रिया=कृणापहरणादिरूपा  
तदुपरि सिद्धैव । एषां तदविनाभादिति भावः ।

एवं साक्षिलेख्यभुक्तिरूपं त्रिविधं मानुषं प्रमाणं निरूपितम् ।

अथ दिव्यान्युच्यन्ते ।

तत्र दिव्यं नाम मानुषप्रमाणाभाव एव यन्निर्णायकं तदुच्यते ।  
यत्तु स्मृतितत्त्वे एवकारस्थल अपिशब्दं दत्त्वा मानुषप्रमाणसत्त्वेऽपि यत्र  
दिव्याङ्गीकारस्तत्रापि तद्भवतीति प्रयोजनमुक्तम् । तदयुक्तम् ।

एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते (२।२२)

इति वदता याज्ञवल्क्येन

प्रमाणहीने वादे तु निर्दोषा दैविकी क्रिया ।

इति वदता बृहस्पतिना च

युक्तिष्वप्यसमर्थासु शपथैरेनमर्दयेत् ।

इति नारदेनापि मानुषप्रमाणासत्त्वे एव दिव्यस्य विधानात् ।

२२ बी० मि०



१७० वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

तत्र बृहस्पतिः दिव्यभेदानाह—

घटोऽग्निरुदकं चैव विषं कोशस्तु पञ्चमः ।

षष्ठं तु तण्डुलः प्रोक्तः सप्तमं तप्तमाषकम् ॥

अष्टमं फालमित्युक्तं नवमं धर्मजं तथा ।

दिव्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि स्वयम्भुवा ॥ इति ।

नारदः—( व्य० प० १ )

युक्तिष्वप्यसमर्थासु शपथैरेनमर्दयेत् ।

अर्धकालबलापेक्षमग्न्यम्बुसुकृतादिभिः ॥ ( २३९ )

घटोऽग्निरुदकं चैव विषं कोशस्तु पञ्चमः ।

उक्तान्येतानि दिव्यानि विशुद्ध्यर्थं महात्मभिः ॥ ( २५२ )

सन्दिग्धेऽर्थेऽभियुक्तानां परीक्षार्थं महात्मनाम् ।

प्रोक्तानि नारदेनेह सत्यानृतविशुद्ध्ये ॥ इति । ( २५३ )

अर्दयेत्=पीडयेत् । अर्थापेक्षत्वं सिसाधयिषितार्थस्याल्पत्वमहस्वानुरू-  
पमित्यर्थः । नन्वेतेषामपि शपथानां मानुषप्रमाणाभाव एव निर्णाय-  
कत्वेन दिव्यत्वात् कथं दिव्यानि नवेत्यभिधानम् ।

तथा च शङ्खः—

तत्र दिव्यं नाम तुलाधारणं विषाशनमप्सु प्रवेशो लोहधारणमि-  
ष्टापूर्त्तदानमन्यांश्च शपथान् कारयेत् । इति ।

तांश्च शपथानाह बृहस्पतिः—

सत्यं वाहनशस्त्राणि गोबीजकनकानि च ।

देवब्राह्मणपादांश्च पुत्रदारशिरांसि च ॥

एते च शपथाः प्रोक्ताः स्वल्पार्थे सुकराः सदा ॥ इति ।

नारदोऽपि—

सत्यं वाहनशस्त्राणि गोबीजकनकानि च ।

देवतापितृपादाश्च दत्तानि सुकृतानि च ॥

( व्य० प० १ श्लो० २४८ )

स्पृशेच्छिरासि पुत्राणां दाराणां सुहृदां तथा ।

अभियांगेषु सर्वेषु कोशपानमथापि वा ॥ ( १ )

इत्येते शपथाः प्रोक्ता मनुना स्वल्पकारणे । इति ।

सत्यम् । अत्र समनन्तरभाविनिर्णयनिमित्तस्य दिव्यत्वेन विवक्षि-  
तत्वात् । तादृशत्वं च घटादीनामेव ननु शपथानाम् । तेषां कालान्तर-  
भाविनिर्णयनिमित्तत्वात् । नन्वेवं कोशस्य कथं तेषु ग्रहणमिति चेत् ,

( १ ) इदं नार. स्मृतौ न दृश्यते ।

सत्यम् । तस्य तेषु पाठो महाभियोगविषयत्वसाम्यात् सावष्टम्भाभि-  
योगविषयत्वसाम्याच्च । वस्तुतस्तु शपथानामपि नारदादिष्वचनानुसा-  
राद्गोबलीवर्दन्यायेन दिव्यत्वाभ्युपगमेन नवशब्दस्योपलक्षणत्वात् ।

मनुः—

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ।

अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥

अग्निं वाहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् ।

पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत् पृथक् ॥ (८।१०९।११४)

यस्माद्देवैः प्रयुक्तानि पुष्करार्थं महात्मभिः ।

परस्परविशुद्ध्यर्थं तस्मादिव्यानि नामतः ॥ ( इदं न दृश्यते )

असाक्षिकेष्विति मानुषप्रमाणराहितेष्वात्यर्थः । उद्दिष्टानां दिव्यानां मध्ये  
तुलादीनि महाभियोगे प्रयोक्तव्यानि ।

तथा च याज्ञवल्क्यः—

तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यानीह विशुद्ध्ये ।

महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोकरि ॥

रुच्या वान्यतरः कुर्यादितरो वर्त्तयेच्छिरः ।

( अ० २ श्लो० ९५।१६ )

अत्राग्निशब्देन तप्तायःपिण्डादयो गृह्यन्ते । शीर्षकं=लक्षणया जयपरा-  
जयनिमित्तो दण्डः । तत्र तिष्ठतीति शीर्षकस्थः तत्प्रयुक्तदण्डभागित्य-  
र्थः । रुच्या=इच्छया । अन्यतरः=अभियुक्ताभियोक्त्रोरन्यतरः । इतरः शिरो  
वर्त्तयेत्=दण्डं स्वीकुर्यादित्यर्थः । ननु “कोशमल्पेऽपि दापयेत्” इति स्व-  
ल्पाभियोगेऽपि कोशस्य विधानात् कथं “महाभियोगेष्वेतानि” इति  
चेत्, न । तस्य तुलादिषु पाठोऽवष्टम्भाभियोगेऽपि प्राप्तवर्थो ननु  
महाभियोगेष्वेवेति नियमार्थः । अन्यथा कोशस्य शङ्काभियोग एव प्रा-  
प्तिः स्यात् ।

अवष्टम्भाभियुक्तानां धटादीनि विनिर्दिशेत् ।

तण्डुलाश्चैव कोशश्च शङ्कास्वेतौ नियोजयेत् ॥ (१)

इति पितामहस्मरणात् । अवष्टम्भः=शीर्षकस्थः । अवष्टम्भोऽत्र निश्चय  
इति स्थितितत्त्वे । यदा शीर्षकस्थोऽभियोक्ता न स्यात्तदा एतानि दिव्या-  
नि न निर्दिशेदिति ।

तथा च नारदः—

शिरोवर्त्ती यदा न स्यात्तदा दिव्यं न दीयते । इति ।

( व्य० प०१ श्लो० २५७ )

(१) शङ्कास्वेव न संशयः इति पाठो मिताक्षरायाम् ।

# ६७२ वीरामित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

दिव्यदाने नियममाह—

पितामहः,

अभियोक्ता शिरःस्थाने दिव्येषु परिकीर्त्यते ।

अभियुक्ताय दातव्यं दिव्यं श्रुतिनिदर्शनात् ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

न कश्चिदभियोक्तारं दिव्येषु विनियोजयेत् । इति ।

“अभियुक्ताय दातव्यम्” इत्यस्यापवादं “रुच्या वान्यतर” इत्यने-  
नाह याज्ञवल्क्यः ।

नारदोऽपि—

अभियोक्ता शिरःस्थाने सर्वत्रैकः प्रकल्पितः ।

इच्छया त्वितरः कुर्यादितरो वर्त्तयेच्छिरः ॥ इति ।

( ना० स्मृ० न दृश्यते )

कच्चिद्विषयविशेषे शिरो विनापि दिव्यं देयमित्याह—

याज्ञवल्क्यः,

विनापि शीर्षकात्कुर्यान्नृपद्रोहेऽथ पातके । इति । (अ०२श्लो०९६)

शीर्षकाद्विनापि=पराजयप्रयुक्तदण्डभागिनोऽभियोक्तुरभावेऽपि पातके=  
ग्रह्यहत्यादौ ।

कात्यायनोऽपि—

पार्थिवैः शङ्कितानां च निर्दिष्टानां च दस्युभिः ।

आत्मशुद्धिपराणां च दिव्यं देयं शिरो विना ॥ इति ।

कालिकापुराणेऽपि—

परदाराभिशापे च चौर्यागम्यागमेषु च ।

महापातकशस्ते च स्याद्विव्यं नृप ! साहसे ॥

विप्रतिपत्तौ विवादेऽवर्णस्य ख्यापने कृते ।

तत्रैव दापयेद्विव्यं शिरःपूर्वं महीपतिः ॥

परदाराभिमर्शे च बहवो यत्र वादिनः ।

शिरोहीनं भवेद्विव्यमात्मनः शुद्धिकारणात् ॥ इति ।

विप्रतिपत्तौ=परदारगमनाद्यभियोगरूपायाम् । विवादे=ऋणादानादिवि-  
षये । अवर्णोऽपवादः । परदाराभिमर्शे चेति चौर्यादीनामप्युपलक्षणम् ।

विष्णुः—

राजद्रोहे साहसे च विना शीर्षं प्रवर्त्तनात् । इति ।

विषयविशेषेषु दिव्यविशेषानाह सङ्ग्रहकारः—

घटादीनि विषान्तानि गुरुवर्धेषु दापयेत् ।



पितामहोऽपि—

अवष्टम्भाभियुक्तानां धटादीनि विनिर्दिशेत् ।  
तण्डुलाश्चैव कोशश्च शङ्कास्वेतौ नियोजयेत् ॥ इति ।

कात्यायनः—

शङ्काविश्वाससन्धाने विभागे रिक्थिनां सदा ।  
क्रियासमूहकर्तृत्वे कोषमेव प्रदापयेत् ॥ इति ।  
क्रियासमूहकर्तृत्वे=सम्भूयैकक्रियाकारित्वे ।

पितामहोऽपि—

विश्रम्भे सर्वशङ्कासु सन्धिकार्ये तथैव च ।  
एषु कोशः प्रदातव्यो नित्यं चित्तविशुद्धये ॥  
शिरःस्थायिविहीनानि दिव्यादीनि विवर्जयेत् ।  
धटादीनि विषान्तानि कोश एकः शिरः स्मृतः ॥ इति ।

तण्डुलानां विषयं स एवाह—

चौर्ये तु तण्डुला देया नान्यत्रेति विनिश्चयः ॥ इति ।

अन्यत्र=स्त्रिसङ्ग्रहादौ न तु दत्तापहवे । “तदर्द्धार्द्धस्य तण्डुला” इति  
वक्ष्यमाणकात्यायनवचनेन तण्डुलदिव्यविधानात् । एतदल्पचौर्यशङ्कायां  
वेदितव्यम् ।

चौर्येऽभिःशङ्कायुक्तानां तप्तमाषो विधीयते ।

इति महाचौर्यशङ्कायां तप्तमाषस्य तेनैव विधानात् । द्रव्यसङ्ख्य-  
या दिव्यविशेषानाह विष्णुः—

अथ शपथक्रिया राजद्रोहादिषु यथाकामं निक्षेपणस्तेयेष्वर्थप्रमा-  
णात् । इति ।

शपथो=दिव्यम् । राजद्रोहादिषु यथाकामं राजेच्छानुरोधादिव्यं, निक्षेपादिषु  
धनतारतम्यादित्यर्थः । बस्त्रादिविषयविवादे तु तन्मूल्यद्रव्यपरिमाणं  
प्राप्तम् ।

बृहस्पतिरपि—

विषं सहस्रेऽपहृते पादोने च हुताशनः ।  
त्रिपादोने च सलिलमर्द्धे देयो धटः सदा ॥  
चतुःशताभियोगे तु दातव्यस्तप्तमाषकः ।  
त्रिशते तण्डुला देयाः कोशश्चैव तदर्द्धके ॥  
शते हृतेऽपहृनुते च दातव्यं धर्मशोधनम् ।  
गोचौरस्य प्रदातव्यं सद्यः कालावलेहनम् ॥ (१)

(१) गोचौरस्य प्रदातव्यः सभ्यैः फालः प्रयत्नतः । इति पाठोऽपराके ।

# १७४ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

एषा सङ्ख्या निकृष्टानां मध्यानां द्विगुणा स्मृता ।

चतुर्गुणोत्तमानां च कल्पनीया परीक्षकैः ॥ इति ।

धर्मशोधनम्=धर्मजदिव्येन शोधनम् । निकृष्टानां जातिगुणधर्मैः । मध्यम-  
त्वमुत्तमत्वं च तैरेव । यत्तु—

नासहस्राद्धरेत् फालं न विषं न तुलां तथा । (२।१९)

इति याज्ञवल्क्यवचनं तन्मध्यमोत्तमपुरुषविषयम् ।

यत्तु—

सहस्रे तु धटं दद्यात्सहस्राद्धं तथायसम् ।

अर्द्धस्यार्द्धं तु सलिलं तस्यार्द्धं तु विषं स्मृतम् ॥

इति पितामहवचनम् । तद्यत्राल्पद्रव्यापहारे पातित्यं भवति तद्विष-  
यम् । एतत् स्तेयसाहसविषयम् । दत्तापहवे तु—

कात्यायनः,

दत्तस्यापहवो यत्र प्रमाणं तत्र कल्पयेत् ।

स्तेयसाहयोर्दिव्यं स्वल्पेऽप्यर्थे प्रदापयेत् ॥

सर्वद्रव्यप्रमाणं तु ज्ञात्वा हेम प्रकल्पयेत् ।

हेमप्रमाणयुक्तं तु तदा दिव्यं प्रयोजयेत् ॥

ज्ञात्वा सङ्ख्यां सुवर्णानां शतनाशे विषं स्मृतम् ।

अशीतेस्तु विनाशे वै दद्याच्चैव हुताशनम् ॥

षष्ठ्या नाशे जलं देयं चत्वारिंशति वै धटम् ।

विंशद्दशविनाशे तु कोशपानं विश्रीयते ॥

पञ्चाधिकस्य वा नाशे तदर्द्धार्द्धस्य तण्डुलाः ।

ततोऽर्द्धार्धविनाशे हि स्पृशेत्पुत्रादिमस्तकम् ॥

ततोऽर्द्धार्द्धविनाशे तु लौकिक्यश्च क्रियाः स्मृताः ।

एवं विचारयन् राजा धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ इति ।

अत्र सुवर्णशब्दः षोडशमाषात्मकः । नाशोऽपहवः । विंशद्दशविनाशे=  
विंशतेर्दशानां वेत्यर्थः । विंशद्दशविनाशे त्रिंशद्दिनाशन इति स्मृतिचन्द्रि-  
कायाम् । पञ्चाधिकस्य=पञ्चभ्योऽधिकस्य षट्प्रभृतेरिति यावत् । तदर्द्धार्द्धस्य  
सुवर्णप्रभृतेः । ततोऽर्द्धार्द्धस्य=अष्टमाषोनसुवर्णार्द्धप्रभृतेः । ततोऽर्द्धार्धवि-  
नाशे=सार्द्धसप्तमाषोनसुवर्णार्द्धप्रभृतेर्विनाशे । लौकिक्यश्च क्रियाः=अपहवे  
तव दशगुणो द्रव्यनाशो भविष्यतीत्यादिकाः । चशब्दः स्मार्त्तशपथ-  
सङ्ग्रहार्थः । अत एवाह—

विष्णुः—

सर्वेष्वेवार्थजातेषु मूल्यं कनकं कल्पयेत् । तत्र च कृष्णलोने शुद्धं

दुर्वाकरं शापयेत् । द्विकृष्णलोने तिलकरम् । त्रिकृष्णलोने रजतकरम् । चतुःकृष्णलोने सुवर्णकरम् । पञ्चकृष्णलोने सीरोद्धृतमहीकरम् । तत्र सुवर्णाङ्गानि कोशो देयः शूद्रस्य । ततः परं यथाहं धृष्टान्युदकविषाणामन्यतमम् । द्विगुणार्थं यथाभिहिता समयक्रिया वैश्यस्य । त्रिगुणेऽर्थं राजन्यस्य । कोशवर्जं चतुर्गुणेऽर्थं ब्राह्मणस्य । न ब्राह्मणस्य कोशं दद्यादन्यत्रागामिकालसमयनिबन्धनक्रियातः । कोशस्थाने ब्राह्मणं सीरोद्धृतमहीकरमेव शापयेत् । प्राग्दृष्टदोषं स्वल्पेऽप्यर्थं दिव्यानामन्यतममेव कारयेत् । सत्सु प्रथितं सच्चरितं न महत्यर्थेऽपि ॥ इति ।

सीरोद्धृतमहीकरं=लाङ्गलोद्धृतलोष्टहस्तमित्यर्थः । ऊनग्रहणमधिके शापनिवृत्त्यर्थम् । शापे तु विशेषमाह—

मनुः,

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ।

गोर्वाजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ इति । (८।११३)

यद्यहमर्थापहृवी स्यां तदा सत्याभिधानधर्मो मम निष्फलः स्यादिति शपथकारिणं ब्राह्मणं वाचयेत् । एवं क्षत्रियादीनां वाहनादीनि निष्फलानि स्युरित्यादौत्यर्थः । पादस्पर्शादीनां विशेषः स्मृत्यन्तरे दर्शितः—

निष्के तु सत्यवचनं द्विनिष्के पादलम्भनम् ।

ऊनत्रिके तु पुष्पं स्यात् कोशपानमतः परम् ॥ इति

अत्र निष्कशब्देन कर्षचतुर्थीशो मुद्रामुद्रितः प्रतिपाद्यते । काचिद्देशे तत्रापि निष्कव्यवहारात् । न तु मनुक्तो निष्कः । तस्य राजतपलात्मकत्वेन मूलकाञ्चनकर्षादधिकत्वात् । तत्र सत्यवचनविधौ “चतुर्गुणेऽर्थं ब्राह्मणस्य” इति विरोधः स्यात् । दिव्ये दण्डे च मनुक्तं परिमाणं ग्राह्यमिति बृहस्पतिराह—

सङ्ख्या रश्मिरजामूला मनुना समुदाहृता ।

कर्षापणान्ता सा दिव्ये नियोज्या विनये तथा ॥ इति ।

सङ्ख्या=परिमाणम् । रश्मिरजामूला=त्रसरेणवादिका । विनये=दण्डे । तच्च परिमाणं प्रतिज्ञापूर्वकं मनुराह—(अ० ८)

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ।

ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ (१३१)

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।

प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ (१३२)

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।

ता राजसर्षपस्तिस्त्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ (१३३)



सर्षपाः षड् यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ।

पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ (१३४)

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।

द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥ (१३५)

ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ।

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ॥ (१३६)

कार्षापणस्तु विज्ञेयः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ।

चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ इति । (१३७)

अत्र ताम्ररूप्यसुवर्णानामिति ताम्ररूप्ययोरल्पत्वात् प्राक्प्रयोगो न तु क्रमप्रदर्शनार्थः । पलानि धरणं दशेत्यन्तं सुवर्णपरिमाणाभिधानम् । चतुःसौवर्णिको निष्क इत्यन्तं रूप्यपरिमाणाभिधानम् । अवशिष्टेन ताम्रपरिमाणाभिधानम् । जालान्तरप्रविष्टे सूर्यरश्मौ यत्सूक्ष्मं रजो दृश्यते तत् त्रसरेणुसंज्ञकम् । अष्टौ त्रसरेणवो लिक्षा तिस्रो लिक्षा राजसर्षपः । त्रयो राजसर्षपाः गौरसर्षपः । षड् गौरसर्षपा मध्यमो यवो न सूक्ष्मो न स्थूल इति मध्यमयवस्य परिमाणमुक्तं मिताक्षरायाम् । मध्यशब्दः पादपूर्णार्थः । तथा च सम्पूर्णयवपरिमाणमुक्तमिति मनुभाष्ये । त्रयो यवाः कृष्णलम् । माषः पञ्च कृष्णलानि । सुवर्णः षोडश माषाः । पलं सुवर्णाश्चत्वारः । धरणं दश पलानि । रूप्यमाषो द्वे कृष्णले । राजतस्य धरणं षोडश रूप्यमाषाः । अस्य च पुराण इति संज्ञान्तरम् । राजतः शतमानः राजतदशधरणानि राजतपलसंज्ञाप्यस्य भवति ।

शतमानं तु दशभिर्धरणैः पलमेव तु । (अ० १३लो० ३६५)

इति याज्ञवल्क्यस्मरणात् । पूर्वोक्तसुवर्णचतुष्टयपरिमित एको राजतनिष्कः । कार्षिकः=कर्षसंमितः ताम्रिकस्ताम्रविकारः कार्षापणो विज्ञेयः । पण इति च संज्ञा अस्यैव विज्ञेयेत्यर्थः । चशब्दोऽध्याहार्यः ।

अत एव बृहस्पतिः—

निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ।

ताम्रकर्षकृता मुद्रा विज्ञेयः कार्षिकः पणः ॥

स एव चान्द्रिका प्रोक्ता ताश्चतसस्तु धानकाः ।

ता द्वादश सुवर्णस्तु दीनाराख्यः स एव तु ॥ इति ।

कर्षः=पलचतुर्थांशः । “ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम्” इत्यमरसिंहेनाभिधानात् । ते=माषाः षोडशाक्षः कर्ष इति च संज्ञेत्यर्थः । तेनाक्षकर्षशब्दयोः सुवर्णपरिमाणवचनत्वमित्यवगम्यते । याज्ञवल्क्यः पले विकल्पमाह—

दिव्यनिरूपणे वर्णभेदेन दिव्यव्यवस्थापनम् । १७७

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वापि प्रकीर्तितम् । इति । (१।३६४)  
तस्य चतुर्थाऽशो विंशतिर्माषाः तत्परिमितः कार्षापणः ।

अत एव कात्यायनः—

माषो विंशतिभागस्तु ज्ञेयः कार्षापणस्य तु ।

काकिणी तु चतुर्भागा माषकस्य पणस्य च ॥ इति ।

राजतोऽपि कार्षापणोऽस्तीत्याह नारदः—

कार्षापणो दाक्षिणस्यां दिशि रौप्यः प्रवर्त्तते । इति ।

( परिशि० प्र० श्लो० ५० )

व्यासस्तु सौवर्णनिष्कस्य प्रमाणमाह—

पलान्यष्टौ सुवर्णाः स्युस्ते सुवर्णाश्चतुर्दश ।

एवं निष्कप्रमाणं तु व्यासेन परिकीर्तितम् ॥ इति ।

वर्णभेदेन दिव्यव्यवस्थामाह नारदः—

ब्राह्मणस्य घटो देयः क्षत्रियस्य हुताशनः ।

वैश्यस्य सलिलं देयं शूद्रस्य विषमेव तु ॥

साधारणः समस्तानां कोशः प्रोक्तो मनीषिभिः ।

विषं विना ब्राह्मणस्य सर्वेषां वा तुला स्मृता ॥ (१) इति ।

अनित्या चैवं व्यवस्था ।

राजन्येऽग्निं घटं विप्रे वैश्ये तोयं नियोजयेत् ।

सर्वेषु सर्वदिव्यं वा विषवर्जं द्विजोत्तमे ॥

इति कात्यायनस्मरणात् । व्यवस्थापक्षे वयोविशेषादिना व्यवस्था-  
पनीयम् ।

तदाह नारदः—

कृषीबातुरान् सत्त्वहीनान् परितश्चादिताम्रान् ।

बालवृद्धातुरांस्त्रीश्च परीक्षेत घटे सदा ॥

स्त्रीणां तु न विषं प्रोक्तं न वापि सलिलं स्मृतम् ।

घटकोशादिभिस्तासामन्तस्तत्त्वं विचारयेत् ॥

नार्त्तानां तोयशुद्धिः स्यात् न विषं पित्तरोगिणाम् ।

द्विद्वयन्धकुनखादीनां नाग्निकर्म विधीयते ॥

( व्या० प० १ श्लो० २५५ )

( १ ) एते श्लोकाः ना. स्मृ. व्य. प. १ मे २५४ श्लोकानन्तरं तदिदम्पण्यां  
दृश्यन्ते ।

२३ वी० मि०

## १७८ वीरामित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

न मज्जनीयाः स्त्रीबाला धर्मशास्त्रविचक्षणैः ।

रोगिणो ये च वृद्धाः स्युः पुमांसो ये च दुर्बलाः ॥ (३१३)

निरुत्साहान् व्याधिक्षिप्यार्त्तास्तोये निमज्जयेत् ।

सद्यो म्रियन्ते मज्जन्तः स्वल्पप्राणा हि ते स्मृताः ॥ (३१४)

साहसेनागतानेतान्नैव तोये निमज्जयेत् ।

न चापि हारयेदर्गिनं न विषेण विशोधयेत् ॥ इति (३१५)

हारयेत्=कारयेत् ।

याज्ञवल्क्यः—

तुला स्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम् ।

अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्त विषस्य च ॥ इति । (२१८)

स्त्री=स्त्रीमात्रं जातिवयोऽवस्थाविशेषानादरेण । बाल=आषोडशा-  
वर्षाज्जातिविशेषानादरेण । वृद्धो=ऽशीतिकावरः । अन्धो=नेत्रविकलः ।  
पङ्गुः=पादविकलः । ब्राह्मणो=जातिमात्रम् । रोगी=व्याधितः । एतेषां शो-  
धनार्थं तुलैवेति नियमः । अनेन वचनेन सर्वदिव्यसाधारणेषु मार्गशी-  
र्षचैत्रवैशाखेषु स्यादीनां सर्वदिव्यप्रसक्तौ तुलैवेति नियम्यते न तु  
सर्वकालं स्त्रीणां तुलानियमः कौशादिविधानात् । अग्निः फालस्तप्तमा-  
षश्च क्षत्रियस्य । जलमेव वैश्यस्य । वा एवार्थे । शूद्रस्य विषस्य सप्तैव यवा  
उक्तप्रमाणलक्षणा भवन्तीत्यर्थः । ब्राह्मणस्य तुलाविधानात् शूद्रस्य  
विषविधानात् अग्निर्जलं वेति क्षत्रियवैश्यविषयमित्यवगम्यते ।

अत एव पितामहः—

ब्राह्मणस्य धटो देयः क्षत्रियस्य हुताशनः ।

वैश्यस्य सलिलं प्रोक्तं विषं शूद्रस्य दापयेत् ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

न लोहशिल्पिनामग्निः सलिलं नाम्बुसेविनाम् ।

मन्त्रयोगविदां चैव विषं दद्यात्तु न क्वचित् ॥

तण्डुलैर्न वियुञ्जीत व्रतिनं मुखरोगिणम् ॥ इति ।

व्रतिनं=पयोव्रतादिनियमस्थम् ।

हारीतोऽपि—

कुष्ठिनां वर्जयेदर्गिनं सलिलं श्वासकासिनाम् ।

पित्तं श्लेष्मवतां नित्यं विषं च परिवर्जयेत् ॥ इति ।

विष्णुरपि—

न श्लैष्मिकाणां व्याध्यर्दितानां भीरूणां श्वासकासिनामम्बुजी-  
विनामुदकं हेमन्तशिशिरयोश्च । इति ।



दिव्यनिरूपणे रोग्यादिभेदेन दिव्यव्यवस्थापनम् । १७९

पितामहोऽपि—

कुष्ठिनां वर्जयेदग्निं सलिलं श्वासकासिनाम् ।  
पित्तश्लेष्मवतां नित्यं विषं तु परिवर्जयेत् ॥  
मद्यपस्त्राव्यसनिनां कितवानां तथैव च ।  
कोशः प्राक्तेर्न दातव्यो ये च नास्तिकवृत्तयः ॥ इति ।

यत्तु पितामहेनोक्तम्—

सम्रतानां भृशार्त्तानां ध्याधितानां तपस्विनाम् ।  
स्त्रीणां च न भवेद्दिव्यं यदि धर्मस्त्ववेक्ष्यते ॥ इति,  
तुलेतरविषयं तदिति केचित् । तदयुक्तम् ।  
धटकोशादिभिस्तासामन्तस्तत्त्वं विचारयेत् ।

इति पूर्वोदाहृतनारदवचनेन स्त्रीणां कोशादिविधानात् । तदग्न्यम्बुविषयमित्युक्तं विद्यारण्यश्रीपादैः । विज्ञानेश्वराचार्यास्तु—‘पुंस्त्रियोर्विवादे—“रुच्या वान्यतरः कुर्यात्” इत्यनेन पक्षे स्त्रीणामपि दिव्यप्रसक्तौ पुरुषस्यैव दिव्यं न स्त्रीणामित्येतत्परमिदम् । अन्यथा सर्वथा तासां दिव्यनिषेधे “धटकोशादिभिस्तासामन्तस्तत्त्वं विचारयेत्” इत्यनेन विरोधः स्यात् इति प्राहुः ।

कात्यायनः—

गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।  
प्रेष्यान्वार्जुषिकांश्चैव ग्राहयेच्छूद्रवह्निजान् ॥

कालिकापुराणेऽपि—

वर्णान्त्यस्य सदा देयं माषकं तप्तहेमजम् ॥ इति ।  
वर्णानामन्त्यः प्रत्यन्त्यः तस्येत्यर्थः ।

नारदोऽपि—

(व्य० प० १ श्लो० ३३२)

महापराधे निर्द्धर्मे कुतप्ते क्लीबत्कुत्सिते ।  
(१) नास्तिके दृष्टदोषे च कोशदानं विवर्जयेत् ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

मातापितृद्विजगुरुवृद्धस्त्रीबालघातिनाम् ।  
महापातकयुक्तानां नास्तिकानां विशेषतः ॥  
लिङ्गिनां प्रमदानां च मन्त्रयोगक्रियाविदाम् ।  
वर्णसङ्करजातीनां पापाश्रयासप्रवर्त्तिनाम् ।

## १८० वीरामित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणम् ।

एतेष्वेवाभियोगेषु निन्द्येष्वेव प्रयत्नतः ।

दिव्यं प्रकल्पययेन्नैव राजा धर्मपरायणः ॥

एतैरेव नियुक्तानां साधूनां दिव्यमर्हति ।

(१) न सन्ति साधवो यत्र तत्र शोध्याः स्वकैर्नरैः ॥ इति ।

साधूनां दिव्यमर्हति राजा कल्पयितुमिति शेषः । प्रतिनिधिद्वारा एतै-  
र्दिव्यं कारणीयमिति द्रढयितुमाह स एव—

महापातकयुक्तेषु नास्तिकेषु विशेषतः ।

न देयं तेषु दिव्यं तु पापाभ्यासरतेषु च ॥ इति ।

श्रुतः—

येषु पापेषु दिव्यानि प्रतिषिद्धानि यत्नतः ।

तारयेत्सज्जनैस्तानि नाभिशस्तं त्यजेन्नरः ॥ इति ।

तारयेत्=शोधयेत् । अभिशस्तं प्रतिनिधिद्वारा शोधनमकारयित्वा न  
त्यजेदित्यर्थः । यत्तु तेनैवाक्तम्—

अस्पृश्याधमदासानां स्नेच्छानां पापकारिणाम् ।

प्रातिलोभ्यप्रसूतानां निश्चयो नतु राजनि ॥

तत्प्रसिद्धानि दिव्यानि संशये तेषु निर्दिशेत् ॥ इति,

तत् तैर्नियुक्तानां साधूनामभावे विज्ञेयम् । तत्प्रसिद्धानि=सर्पघटादी-  
नि इति स्मृतितत्त्वे । साधूनामप्यसामर्थ्ये प्रतिनिधिमभ्युपजानाति—

स एव,

कालदेशाविरोधे तु यथायुक्तं प्रकल्पयेत् ।

अन्येन हारयेद्दिव्यं विधिरेव विपर्यये ॥ इति ।

विपर्यये=सामर्थ्याभावे । सर्ववर्णविषये विशेषमाह—

हारीतः,

राजन्येऽग्निं घटं विप्रे वैश्ये तोयं नियोजयेत् ।

न विषं ब्राह्मणे दद्याद्विषं वर्णान्तरे स्मृतम् ॥

कोशतण्डुलधम्मास्तु धर्मसम्भवमेव च ।

पुत्रदारादिशपथान् सर्ववर्णे प्रयोजयेत् ॥ इति ।

अथ दिव्यकालः ।

तत्र पितामहः—

यो यस्य विहितः कालो विधिर्यस्य च यो यथा ।

तं प्रवक्ष्यामि तत्त्वेन वादिनश्च बलावलम् ॥

(१) नेच्छन्तीति पाठान्तरम् ।

चैत्रो मार्गशिराश्चैव वैशाखश्च तथैव च ।  
एते साधारणा मासा दिव्यानामाविरोधिनः ॥  
घटः सर्वर्तुकः प्रोक्तो वाते वाति विवर्जयेत् ।  
अग्निः शिशिरहेमन्तवर्षासु परिकीर्तितः ॥  
शरद्व्रीष्मे च सलिलं हेमन्ते शिशिरे विषम् ॥ इति ।

विष्णुरपि—

स्त्रीब्राह्मणविकलासमर्थरोगिणां न तुला देया न वाति वायौ न  
कुष्ठसमर्थलोहकाराणामग्निर्देयः शरद्व्रीष्मयोश्च न कुष्ठिपैत्तिकब्राह्म-  
णानां विषं देयं प्रावृषि च । न श्लेष्मिकाणां व्याध्यर्दितानां भीरूणां  
श्वासकासिनामम्बुजीविनामुदकं हेमन्तशिरयोश्च । इति ।

हेमन्तनिषेधोऽत्र पौषमासविषय एव नतु मार्गशीर्षविषयोऽपि ।  
मार्गशीर्षस्य “चैत्रो मार्गशिरा” इति पूर्वादाहृत पितामहवचनेन सकल-  
दिव्यसाधारणत्वाभिधानात् ।

नारदोऽपि—

( व्य० प० १ दिव्य० प्र० )

विचार्य्य धर्मनिपुणैर्धर्मशास्त्रविशारदैः ।  
धर्मं सर्वर्तुकं प्रोक्तं पण्डितैर्घटधारणम् ॥ ( २६० )  
वर्षासु समये वह्निर्हेमन्तशिशिरे तथा ।  
व्रीष्मे सलिलमित्युक्तं विषं काले तु शीतले । ( २४५ )  
न शीते तोयशुद्धिः स्यान्नोष्णकालेऽग्निशोधनम् ।  
न प्रावृषि विषं दद्यात् प्रवाते न तुलां तथा ॥ ( २५९ )  
नापराह्णे न मध्याह्ने न सन्ध्यायां कदाचन । इति । ( ३२० )  
मध्याह्ने दिव्यनिषेधो जलव्यतिरिक्तविषयः । अत एव—

पितामहः,

पूर्वाह्णेऽग्निपरीक्षा स्यात् पूर्वाह्णे च घटो भवेत् ।  
मध्याह्ने तु जलं देयं धर्मतत्त्वमभीप्सता ॥  
दिवसस्य तु पूर्वाह्णे कोशशुद्धिर्विधीयते ।  
रात्रौ तु पश्चिमे भागे विषं देयं सुशीतले ॥ इति ।

अत्र विशेषतो वर्षासु निषेधात् सिंहस्त्वविवेकः । परीक्षामात्रनिषेधा-  
च्च दिव्यान्तरं सिंहस्त्ववर्षास्त्वपि कुर्वन्ति । अतो—

याम्यायने हरौ सुप्ते सर्वकर्माणि वर्जयेत् ।

इत्यस्य न विषयम् । तथा च उच्यते—

सिंहस्थे मकरस्थे च जीवे चास्तमिते भृगौ ।  
मलमासे न कर्त्तव्या परीक्षा जयकाङ्क्षिणा ॥



## १८२ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

तथा—

रविशुद्धौ गुरौ चैव न शुकेऽस्तङ्गते पुनः ।  
सिंहस्थे च रवौ नैव परीक्षा शस्यते बुधैः ॥  
नाष्टम्यां न चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणम् ।  
न परीक्षाधिवासश्च शनिभौमदिने भवेत् ॥ इति ।  
रविशुद्धौ गुरौ चैवेत्यत्र शस्यत इति शेषः ।

तथा च दीपिकायाम्—

नो शुक्रास्तेऽष्टमेऽर्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमन्दौ  
विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ ॥  
नाडीनक्षत्रहीने गुरुरविरजनीनाथताराविशुद्धौ  
प्रातः कार्य्या परीक्षा द्वितनुचरग्रहांशोदये शस्तलश्रे ॥ इति ।  
यद्यपि दिव्ये वारविशेषविधानाभावस्तथापि शिष्टाचारादादित्य-  
वारे दिव्यानि दातव्यानीति मिताक्षरायाम् ।

### अथ दिव्यदेशाः ।

तत्र पितामहः—

प्राङ्मुखो निश्चलः कार्यः शुचौ देशे घटः सदा ।  
इन्द्रस्थाने सभायां वा राजद्वारे चतुष्पथे ॥ इति ।  
घटग्रहणं दिव्यान्तरस्याप्युपलक्षणम् । इन्द्रस्थानग्रहणं च प्रसि-  
द्धदेवतायतनान्तरस्याप्युपलक्षणम् । अत एव दिव्यमात्रमुपक्रम्य—  
नारदः, ( व्य० प० १ दि० प्र० २६५ )  
सभाराजकुलद्वारे देवायतनचत्वरे इति ।  
विषयविशेषे इन्द्रस्थानादीनां व्यवस्थामाह—  
कात्यायनः,  
इन्द्रस्थानेऽभिषेकस्तानां महापातकिनां नृणाम् ।  
नृपद्रोहप्रवृत्तानां राजद्वारे प्रयोजयेत् ॥  
प्रातिलोभ्यप्रसूतानां दिव्यं देयं चतुष्पथे ।  
अतोऽन्येषु तु कार्य्येषु सभामध्ये विबुर्बुधाः ॥ इति ।  
इन्द्रस्थाने=इन्द्रध्वजपूजास्थाने । दिव्यदेशाद्यनादरे दिव्यं विसं-  
व-

दतीत्याह—

नारदः,

अदेशकालदत्तानि बहिर्वासकृतानि च । (१)

व्यभिचारे सदर्थेषु कुर्वन्तीह न संशयः ॥

( ना० स्मृ० न लब्धम् )

(१) बहिर्वादीति बालम्भज्यां पाठः । वादिनमभियोक्ता बहिर्वादीति तदर्थश्च तत्रैव कृतः ।

वासो=जननिवासस्तस्माद्बहिष्कृतानि । निर्जनप्रदेशकृतानीति यावत् ।  
अत एव पितामहः—

प्रत्यक्षं दापयेद्दिव्यं राजा वाधिकृतोऽपि वा ।

ब्राह्मणानां श्रुतवतां प्रकृतीनां तथैव च ॥ इति ।

ब्राह्मणानां श्रुतवताम् प्रकृतयोऽमात्यास्तेषां चेत्यन्वयः ।

अथ दिव्यसाधारणविधिः ।

तत्र बृहस्पतिः—

स्नेहात्क्रोधादलोभतो वा भेदमायान्ति साक्षिणः ।

विधिदत्तस्य दिव्यस्य न भेदो जायते कश्चित् ॥ इति ।

विधिश्च पितामहेन दर्शितः—

दिव्येषु सर्वकार्याणि प्राङ्बिवाकः समाचरेत् ।

अध्वरेषु यथाध्वर्युः सोपवासो नृपाक्षया ॥

तत आवाहयेद्देवान् विधिनाननेन धर्मवित् ।

वादित्रतूर्यघोषैश्च गन्धमालयानुलेपनैः ॥

प्राङ्मुखः प्राञ्जलिभूत्वा प्राङ्बिवाकस्ततो वदेत् ।

एहोहि भगवन्धर्म ! ह्यस्मिन्दिव्ये समाविश ॥

आवाह्य तु घटे धर्मं पश्चादङ्गानि विन्यसेत् ।

सर्वकार्याणि=साधारणानि असाधारणानि च । ततः=तदुपयोगिसाम-

ग्रीसम्पादनानन्तरमित्यर्थः । घटग्रहणमत्र दिव्यमात्रोपलक्षणम् । अस्मि-

न्दिव्य इति मन्त्रलिङ्गादेतेषां धर्माणां दिव्यमात्रे साम्यम् ।

इमं मन्त्रविधिं कृत्स्नं सर्वदिव्येषु योजयेत् ।

आवाहनं च देवानां तथैव परिकल्पयेत् ॥

इत्युपसंहरता तेनैवोक्तत्वाच्च । अङ्गानि कानीत्याकाङ्क्षायां—

स एवाह,

इन्द्रं पूर्वे तु विन्यस्य प्रेतेशं दक्षिणे तथा ।

वरुणं पश्चिमे भागे कुबेरं चोत्तरे तथा ॥

अग्न्यादिलोकपालांश्च कोणभागेषु विन्यसेत् ।

इन्द्रः पीतो यमः श्यामो वरुणः स्फटिकप्रभः ॥

कुबेरस्तु सुवर्णाभो ह्यग्निश्चैव सुवर्णभः ।

तथैव निर्ऋतिः श्यामो वायुर्धूम्रः प्रशस्यते ॥

ईशानस्तु भवेद्रक्त पवं ध्यायेत्क्रमादिमान् ।

इन्द्रस्य दक्षिणे पार्श्वे वसुनास्थापयेद्बुधः ॥

धरो ध्रुवस्तथा सोम आपश्चैवानलोऽनिलः ।  
 प्रत्यूषश्च प्रभातश्च च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥  
 देवेशेशानयोर्मध्ये आदित्यानां तथाऽयनम् ।  
 धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोऽशो भगस्तथा ॥  
 इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ।  
 ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः ॥  
 इत्येते द्वादशादित्या नामभिः परिकीर्त्तिताः ।  
 अग्नेः पश्चिमभागे तु रुद्राणामयनं विदुः ॥  
 वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरिशश्च महायशः ।  
 अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ॥  
 भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च विशास्पतिः ।  
 स्थाणुर्मवश्च भगवान् रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः ॥  
 प्रेतेशरक्षोमध्ये च मातृस्थानं प्रकल्पयेत् ।  
 ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥  
 वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा गणसंयुता ।  
 निर्ऋतेरुत्तरे भागे गणेशायतनं विदुः ॥  
 वरुणस्योत्तरे भागे मरुतां स्थानमुच्यते ।  
 पवनः स्पर्शनो वायुरनिलो मरुतस्तथा ॥  
 प्राणाः प्राणेशजीवौ च मरुतोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।  
 धटस्योत्तरभागे तु दुर्गामावाहयेद्बुधः ॥  
 एतासां देवतानां तु स्वनाम्ना पूजनं विदुः ।  
 भूषावसानं धर्माय दत्त्वा चार्घ्यादिकं क्रमात् ॥  
 अर्घ्यादि पश्चादङ्गानां भूषान्तमुपकल्पयेत् ।  
 गन्धादिकां निवेद्यान्तां परिचर्यां प्रकल्पयेत् ॥  
 चतुर्दिक्षु तथा होमः कर्त्तव्यो वेदपारगैः ।  
 आज्येन हविषा चैव समिद्भिर्होमसाधनैः ॥  
 सावित्र्या प्रणवेनाथ स्वाहान्तेनैव होमेयेत् ॥

अङ्गानाम्=इन्द्रादिदुर्गान्तानाम् । अर्घ्याद्युपकल्पनं च न काण्डानुस-  
 येन । तथात्वे प्रयोगवचनावगताङ्गसहभावबाधापत्तेः । किन्तु पदार्था-  
 नुसमयेन । तथा च दुर्गायै भूषणं दत्त्वा धर्मस्येन्द्रादिदुर्गान्तानां च ग-  
 न्धादिपरिचयं प्रकल्पयेदिति । गायत्रीं प्रणवादिकामुच्चार्य पुनः प्रणवं  
 स्वाहाकारान्तमुच्चार्य समिदाज्यचरुभिः प्रत्येकमष्टोत्तरशतं जुहुयात् ।

अनुक्तसङ्ख्या यत्र स्याच्छतमष्टोत्तरं स्मृतम् ।



इति स्मरणादित्यर्थः । होमानन्तरकर्त्तव्यं स एवाह —  
यमर्थमभियुक्तः स्याल्लिखित्वा तं तु पत्रके ।  
मन्त्रेणानेन सहितं तत्कार्यं च शिरोगतम् ॥

मन्त्रश्च—

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।  
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ इति ।  
एतत्सर्वं पूर्वाह्णे कर्त्तव्यम् । तस्य प्रधानकालत्वात् ।

तथा च नारदः— ( व्य०प०१६ि०प्र०श्लो०२६८ )

अहोरात्रोषिते स्नाते आर्द्रवासासि मानवे ।  
पूर्वाह्णे सर्वदिव्यानां प्रदानमनुकीर्त्तितम् ॥ इति ।  
एतत्प्राङ्ग्विवाकेनोपवासादिनियमपूर्वकं कर्त्तव्यम् ।

तथा च नारदः—

प्राङ्ग्विवाकस्ततो विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ।  
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नः शान्तचित्तो विमत्सरः ॥  
सत्यसन्धः शुचिर्दक्षः सर्वप्राणिहिते रतः ।  
उपोषितश्चार्द्रवासाः कृतदन्तानुधावनः ॥  
सर्वेषां देवतानां च पूजां कृत्वा यथाविधि । इति ।

कर्त्तुंरूपवासादिकमाह पितामहः—

त्रिरात्रोपोषिता ये स्युरंकरात्रोषिताय वा ।  
नित्यं देयानि दिव्यानि शुचये चार्द्रवाससे ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि—

सचैलं स्नातमाहूय सूर्योदय उपोषितम् ।  
कारयेत्सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ इति (अ०२२श्लो०९७)  
अत्र सूर्योदयपदेन पूर्वाह्ण एव ग्राह्यः ।  
पूर्वाह्णे सर्वदिव्यानां प्रदानमनुकीर्त्तितम् ॥ (व्य०प०१६ि०श्लो०२६८)

इति नारदवचनानुरोधात् । त्रिरात्रैकरात्रपक्षयोः शक्ताशक्तविषयत्वेन  
व्यवस्था ज्ञेया । दिव्यप्रयोगानन्तरं दक्षिणादानमुक्तेन विधिना  
दिव्यप्रयोगं कारयितुं राज्ञः फलं चाह—

पितामहः,

सद्भिः परिवृतो राजा शुद्धिमेतां प्रपूजयेत् ।  
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यान् दक्षिणाभिस्तु तोषयेत् ॥  
एवं कारयिता राजा भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।  
महतीं कीर्त्तिमाप्नोति ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ इति ।

## १८६ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

अयं च विधिः सर्वदिव्यसाधारण इत्याह—

स एव,

इमं मन्त्रविधिं कृत्स्नं सर्वदिव्येषु योजयेत् ।

आवाहनं च देवानां तथैव परिकीर्तितम् ॥ इति ।

सर्वदेवावाहनादि संशोध्यशिरसि पन्नारोपणान्तं सर्वदिव्यसाधारणमित्यर्थः ।

इति दिव्यमातृका ।

अथ धटाविधिः ।

तत्र पितामहः—

विशालामुच्छ्रितां शुभ्रां धटशालां तु कारयेत् ।

यत्रस्थो नोपहन्येत श्वभिश्चाण्डलवायसैः ॥

कपाटबीजसंयुक्तां परिचारकरक्षिताम् ।

पानीयादिसमायुक्तामशून्यां कारयेन्नृपः ॥ इति ।

बीजानि=यवबीजाद्यानि । धटार्थानि काष्ठानि--

नारद आह,

खादिरं कारयेत्तत्र निर्व्रणं सुष्कवर्जितम् ।

शांशपं तदभावे वा शालं वा कोटरैर्विना ॥

अर्जुनं तिन्दुकीसारं तिनिशं रक्तचन्दनम् ।

अर्जुनस्तिलकोऽशोकतिनिसो रक्तचन्दनः ॥

इति माधवीये पाठः ।

एवं विधानि काष्ठानि धटार्थं परिकल्पयेत् ॥ इति ।

( दिव्यप्र० श्लो० २६४।२६५ )

शांशपं=शिशपावृक्षसम्बन्धि । “देविकाशिशपा” ( अ०७पा०३सू०१ ) इति पाणिनिस्मरणादिकारस्याकारः । एवंविधानीति अन्यस्याप्योद्गम्बरादेर्यज्ञियस्य काष्ठस्य ससारस्य ग्रहणम् ।

अत एव पितामहः—

छित्वा तु यज्ञियं काष्ठं यूपवन्मन्त्रपूर्वकम् ।

प्रणम्य लोकपालेभ्यस्तुला कार्या मनीषिभिः ॥

मन्त्रः सौम्यो वानस्पत्यश्छेदने जप्य एव च । इति ।

यूपवन्मन्त्रपूर्वकमित्यनेन ॐ ओषधे त्रायस्वैनमित्यादिच्छेदनमन्त्रप्रयोगादिकमुक्तम् । वानस्पत्यः वनस्पते शतबल्शो विरोहेति मन्त्रः । छेदने कृते इति शेषः । वानस्पत्यस्य छेदनानन्तरं प्रयोगे यूपवदित्यतिदेशात्सिद्धेऽपि

पुनर्विधानम् औपदेशिकेन सोमदैवत्येनातिदेशिकस्य तस्य बाधनिवृत्त्यर्थम् । अत्र जप्य एव चेति चशब्दस्य वानस्पत्य इत्यनेनावग्यात् तस्य च समुच्चयद्योतकत्वात्समुच्चय इति केचित् । सौम्यवानस्पत्ययोरेकार्थत्वात् । “तुल्यार्थास्तु विकल्पेरेन” इत्यनेन न्यायेन ब्रीहियववद्विकल्प इत्यपरे ।

पितामहः—

प्राङ्मुखो निश्चलः कार्यः शुचौ देशे धटः सदा ।

इन्द्रस्थाने सभायां वा धर्मस्थाने चतुष्पथे ॥ इति ।

धटनिर्माणप्रकारं तत्प्रमाणं चाह—

पितामहः,

चतुर्हस्ता तुला कार्या पादौ कार्यौ तथाविधौ ।

अन्तरं तु तयोर्हस्तौ भवेदध्यर्द्धमेव च ॥ इति ।

पादौ=तुलाधारकाक्षनामककाष्ठधारणाख्यौ स्तम्भौ । तथाविधौ=चतुर्हस्तौ । अन्तरं=मध्यम् । अध्यर्द्धं=सार्धहस्तद्वयम् । अक्षकाष्ठस्य प्रमाणं पादस्तम्भमध्यप्रमाणाभिधानेनैव सूचितमिति न पृथगुपन्यस्तम् । अन्तरालप्रमाणपर्यालोचनया ततः किञ्चिदधिकमक्षकाष्ठं कर्तव्यम् । पादस्तम्भयोर्मस्तकप्रदेशाद् यथा बहिर्न निःसरति तथा अक्षकाष्ठं कार्यमिति स्मृतिचन्द्रिकायाम् । अत्र निखातभागपरित्यागेन पादस्तम्भयोश्चतुर्हस्तत्वाभिधानं ज्ञेयम् ।

अत एव पितामहः—

हस्तद्वयं निखेयं तु पादयोरुभयोरपि । इति ।

व्यासोऽपि—

हस्तद्वयं निखेयं तु प्रोक्तं मुण्डकयोर्ध्वयोः ।

षड्हस्तं तु तयोः प्रोक्तं प्रमाणं परिमाणतः ॥ इति ।

मुण्डकौ=पादस्तम्भौ । हस्तप्रमाणं दर्शितं

कालिकापुराणे,

यवानां तण्डुलैरेकमङ्गुलं चाष्टमिर्भवेत् ।

अदीर्घयोजितैर्हस्तश्चतुर्विंशतिरङ्गुलैः ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

तिर्यग्यवोदराण्यष्टावृध्वा वा ब्रीहयस्त्रयः ।

प्रमाणमङ्गुलौ हि वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः ॥

हस्तो वितस्तिद्वितयं दण्डो हस्तचतुष्टयम् ।

तत्सहस्रद्वयं क्रोशो योजनं तच्चतुष्टयम् ॥ इति ।



## १८८ वीरभिन्नोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणम्०

हस्तो वितस्तिद्वितयं चतुर्विंशत्यङ्गुलो हस्त इत्यर्थः ।

शारदातिलकेऽपि—

चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः ।

यवानामष्टभिः क्लृप्तं मानाङ्गुलमितीरितम् ॥ इति ।

यवानां=यवतण्डुलानामित्यर्थः । “यवानां तण्डुलैः” इति स्मरणात् ।

तुलायां विशेषान्तरमाह—

पितामहः,

चतुरस्रा तुला कार्य्या दृढा ऋज्वी तथैव च ।

कटकानि च देयानि त्रिषु स्थानेषु यत्नतः ॥ इति ।

कटकानि=लोहमयानि बलयानि । त्रिषु स्थानेषु अन्त्ययोर्मध्ये । कटक-

ग्रहणं लोहकीलादीनामुपयुक्तानामुपलक्षणम् ।

नारदोऽपि—

ऋज्वी धटतुला कार्य्या खादिरी तैन्दुकी तथा ।

चतुरस्रा त्रिभिः स्थानैर्धटककटकादिभिः ॥ इति ।

( व्य० प० १ श्लो० २६३ )

धटो=मध्यम् । कर्कटकौ=अन्त्यौ । पादस्तम्भादीनां स्थूलता तु विशेषानभिधानात् यावति स्थूलये दाढ्यं भवति तावत्येव कार्य्या । शिष्टा-  
चाराद्विशेषो ज्ञेयः । पादस्तम्भावुदग्दक्षिणसंस्थानौ कृत्वा तुला प्राङ्मु-  
खा कार्य्या ।

पश्चिमे तोलयेत्कर्तृनन्यस्मिन् मृत्तिकां शुभाम् ।

इति पितामहस्मरणात् । पूर्वपश्चिमसंस्थानौ कृत्वा दङ्मुखा वा  
कार्य्या ।

धारयेदुत्तरे पार्श्वे पुरुषं दक्षिणे शिलाम् ॥

( व्य० प० १ श्लो० २७२ )

इति नारदस्मरणात् । धटाङ्गत्वेन तोरणादिकं कार्य्यमित्याह—

पितामहः—

तोरणे तु तथा कार्य्ये पार्श्वयोरुभयोरपि ।

धटादुच्चतरे स्यातां नित्यं दशभिरङ्गुलैः ॥

अवलम्बौ तु कर्त्तव्यौ तोरणाभ्यामधोमुखौ ।

मृन्मयौ सूत्रसम्बद्धौ धटमस्तकचुम्बिनौ ॥ इति ।

धटारोहणमाह नारदः—( व्य० प० १ श्लो० २७१, २७२ )

शिक्यद्वयं समासज्य धटककटयोर्दृढम् ।

एकशिक्ये तु पुरुषमन्यत्र तुलयेच्छिलाम् ॥

धारयेदुत्तरे पाद्वै पुरुषं दक्षिणे शिलाम् ।

(१) पिटकं पूरयेत्तस्मिन्निष्टकापांशुलोष्टकैः ॥ इति ।

इष्टकाभिर्ग्रावभिः पांशुभिर्लोष्टैर्वैत्यर्थः । माषराशिभिरपि पिटकं पूरयेत् । “माषराशिमथापि वा” इतिस्मृत्यन्तरवचनात् ।

पितामहोऽपि—

शिक्यद्वयं समासज्य पाद्वयोरुभयोरपि । (२)

प्रागग्रान् कल्पयेद्दर्भास्तत्र विप्रः समाहितः ॥

पश्चिमे तोलयेत्कर्तृनन्यस्मिन्मृत्तिकां शुभाम् ।

इष्टकाभस्मपाषाणकपालास्थिविवर्जिताम् ॥ इति ।

अत्र इष्टकापाषाणयोर्वैज्यत्वोक्तिः समुच्चयनिराकरणार्था न तु विकल्पनिराकरणार्था । पूर्वोदाहृते नारदवचने तयोरपि विधानात् । एतेन मृत्तिकापाषाणादीनां सम्भूयतोलनकर्तृत्वमिति मतमपास्तम् । मृत्तिकाशिलेष्टकादीनामेकार्थत्वात् “तुल्यार्थास्तु विकल्पेरन्” इति न्यायेन विकल्प इति मिताक्षरायाम् ।

विष्णुरपि—

अत्रैकशिक्ये पुरुषमारोपयेत् द्वितीये प्रतिमानं शिलादीति ।

समतानिरीक्षणार्थं राज्ञा तद्विरो नियोक्तव्याः ।

तथा च पितामहः—

परीक्षका नियोक्तव्यास्तुल्यमानविशारदाः ।

वणिजो हेमकाराश्च कांस्यकारास्तथैव च ॥ इति ।

नियुक्ताश्च निरीक्षेरन्नित्याह नारदः— ( व्य०प०१इलो०२७४ )

सुवर्णकारा वणिजः कुशलाः कांस्यकारकाः ।

तां तुल्यमानवैक्षेरन् तुलाधारणकोविदाः ॥ इति ।

निरीक्षकान् प्रत्याह पितामहः—

कार्यः परीक्षकैर्नित्यमवलम्बसमो धटः ।

उदकं च प्रदातव्यं धटस्योपरि पण्डितैः ॥

यस्मिन् न प्लवते तोयं स विज्ञेयः समो धटः ॥ इति ।

अवलम्बसमः=तोरणयोर्लम्बमानौ यौ मृन्मयाववलम्बौ तयोः समः ।

नारदोऽपि— ( व्य०प०१इलो०२७३ )

प्रथमारोहणे ग्राह्यं प्रमाणं निपुणैः सह । (३)

तुलाशिरोभ्यां तुल्यं तु तोरणं न्यस्तलक्षणम् ॥ इति ।

(१) पिटकं=शिक्यम् । (२) शिक्ययोरुभयोरपीत्यपि पाठः ।

(३) तद्गुणैः सहेत्यपि पाठः ।

# १९० वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणानिरूपणप्र०

तोलनानन्तरं कर्त्तव्यं पितामह आह—

तोलयित्वा नरं पूर्वं पश्चात्तमवतार्य तु ।  
घटं तु कारयेन्नित्यं पताकाध्वजशोभितम् ॥  
तत आवाहयेद्देवान्विधिनानेन मन्त्रवित् ।  
वादित्रतूर्यनिर्घोषैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥

प्राङ्मुखः प्राञ्जलिभूत्वा प्राङ्निवाकस्ततो वदेत् ॥ इति ।

विवादानुरूपं प्रश्नं पृच्छतीति प्राट् तद्विवेचयतीति विवाकः प्राट्  
चासौ विवाकश्च प्राङ्निवाकः ।

प्राङ्निवाकसमाख्याव्युत्पत्तिमाह—

कात्यायनः,

व्यवहाराश्रितं प्रश्नं पृच्छति प्राङिति श्रुतिः ।

विवेचयति यत्तस्मिन् प्राङ्निवाकस्ततः स्मृतः ॥ इति ।

ततोऽभियुक्तं तोलयित्वावतार्य धर्मावाहनादारभ्याभियुक्तशिरसि  
पत्रबन्धनान्तं साधारणविधिं कुर्यात् । घटपूजायां गन्धादिविशेष—

नारद आह—

रक्तैर्गन्धैश्च माल्यैश्च दध्यपूपापाक्षतादिभिः ।

अर्चयेत्तु घटं पूर्वं ततः शिष्टांस्तु पूजयेत् ॥ इति ।

( ना० स्मृ० न लब्धम् )

शिष्टानवशिष्टानिन्द्रादीन् । पत्रबन्धनानन्तरं घटमामन्त्रयेत् प्राङ्नि-  
वाक इत्याह—

पितामहः,

घटमामन्त्रयेच्चैव विधिनानेन शास्त्रवित् ॥ इति ।

विधिना=मन्त्रेण । शास्त्रवित्=प्राङ्निवाकः । मन्त्रश्च तेनैव दर्शितः—

त्वं घट ब्रह्मणा सृष्टः परीक्षार्थं दुरात्मनाम् ।

धकाराद्धर्ममूर्तिस्त्वं टकारात् कुटिलं नरम् ॥

धृतो धारयसे यस्माद्घटस्तेनाभिधीयसे ।

त्वं वेत्सि सर्वभूतानां पापानि सुरुतानि च ॥

त्वमेव देव ! जानीषे न विदुर्यानि मानवाः ।

व्यवहाराभिज्ञस्तोऽयं मानुषः शुद्धिमिच्छति ॥ इति ।

शोधयस्याभिमन्त्रणं चाह याज्ञवल्क्यः—( अ०२ )

तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः ।

प्रतिमानसमीभूतो रेखां कृत्वावतारितः ॥ (१००)



त्वं तुले ! सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता ।

तत्सत्यं वद कल्याणि ! संशयान्मां विमोचय ॥ (१०१)

यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय ।

शुद्धं चेद्गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत् ॥ इति । (१०२)

तुलाश्रितः=तुलामारूढः । प्रतिमानसमीभूतः=प्रतिमानेन मृदादिना समी-  
कृतः । रेखां कृत्वा अवतारणे साम्यचिह्नं कृत्वा । अभिमन्त्रणमेवावता-  
रणानन्तरं कार्यम् । अवतारित इति कप्रत्यय दर्शनात् । ततः प्राङ्वि-  
वाकः तुलाधारकं शपथैर्नियम्य शिरोगतपत्रकं पुनर्धटमारोपयेत् ।

अत एव नारदः—

समयैः परिगृह्याथ पुनरारोपयेन्नरम् ।

निर्वाते वृष्टिरहिते शिरस्यारोप्य पत्रकम् ॥ इति ।

( व्य०प० १३लो० २२६ )

समयैः=शपथैः । परिगृह्य=नियम्य । ते च विष्णुना दर्शिताः ।

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये लोकाः कूटसाक्षिणः ।

तुलाधारस्य ते लोकास्तुलां धारयतो मृषा ॥ इति ।

पुनरारोहणकाले ऽभिमन्त्रणमाह—

नारदः,

त्वं वेत्सि सर्वभूतानां पापानि सुकृतानि च ।

त्वमेव देव ! जानीषे न विदुर्यानि मानवाः ॥

( व्य०प० १३लो० २२७ )

व्यवहाराभिशस्तोऽयं मानवस्तोऽल्पते त्वया ।

तदेनं संशयारूढं धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥

देवासुरमनुष्याणां सत्ये त्वमभिषिष्यसे ।

सत्यसन्धोऽसि भगवन् ! शुभाशुभविभावने ॥

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।

अहश्चरात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ इति ।

( ना० स्मृ० न लब्धम् )

मन्त्रोच्चारणानन्तरं कतव्यं पितामह आह—

ज्योतिर्विद्वाह्यणश्रेष्ठः कुर्यात्कालपरीक्षणम् ।

विनाऽह्यः पञ्च विज्ञेयाः परीक्षाकालकोविदैः ॥

साक्षिणो ब्राह्मणाः श्रेष्ठाः यथादृष्टार्थवादिनः ।

ज्ञानिनः शुचयोऽलुब्धा नियोक्तव्या नृपेण तु ॥

## १२२ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

शंसन्ति साक्षिणः श्रेष्ठाः शुद्धशब्दी नृपे तदा । इति ।

दशगुर्वक्षरोच्चारणकालः प्राणः ते षट् विनाडिकाः ।

तथा च स्मृत्यन्तरम् ।

( दशगुर्वक्षरः प्राणः षट् प्राणाः स्याहिनाडिका ॥ इति ।

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

लघ्वक्षरसमा मात्रा निमेषः परिकीर्तितः ।

अतः सूक्ष्मतरः कालो नोपलभ्यो भृगूत्तमः ॥

द्वौ निमेषौ त्रुटिज्ञेया प्राणो दशत्रुटिः स्मृतः ।

विनाडिकास्तु षट् प्राणास्तत्षष्ठ्या नाडिका स्मृता ॥

अहोरात्रं तु तत्षष्ठ्या नित्यमेव प्रकीर्तितम् । इति ।

कानि पुनर्जयपराजयचिह्नानीत्यपेक्षायामाह—

नारदः,

तुलितो यदि वर्धेत विशुद्धः स्यान्न संशयः ।

समो वा हीयमानो वा न विशुद्धो भवेन्नरः ॥ इति ।

( व्य० प० १ श्लो० २८३ )

वर्धेत=उपरिगच्छेत् । हीयमानः अधो गच्छेत् । यत्पुनरुक्तं पितामहेन—

तुलितो यदि वर्धेत शुद्धो भवति धर्मतः ।

हीयमानो न शुद्धः स्यादेकेषां तु समोऽशुचिः ॥

अल्पपापः समो ज्ञेयो बहुपापस्तु हीयते ॥ इति ।

अल्पत्वं व्यभिचारे समालिङ्गनादिना, चौर्ये तद्देशगमनादिना । तत्र एकेषामिति पूजार्थं नतु स्वमतं समस्य शुचित्वद्योतनार्थम् । अल्पपापिनोऽप्यशुचित्वात् । तेन हीयमानसमयोर्न कश्चिद्विशेषः । दण्डे प्रायश्चित्ते परं विशेषस्तयोर्दोषानुसारित्वात् । यत्तु कैश्चित् “एकेषां तु समोऽशुचिः” इति वचनं । ‘अल्पपापः समो ज्ञेय’ इति च वचनं साम्ये संशयपरमेवेत्युक्तम् । तत्र क्लृप्तकल्पनया वाक्यानाज्जातैरुपेक्षणीयम् । यत्तूक्तम्—

बृहस्पतिना,

धटेऽभियुक्तस्तुलितो हीनश्चेद्धानिमाप्नुयात् ।

तत्समस्तु पुनस्तौल्यो वर्द्धितो विजयी भवेत् ॥ इति ।

अयमर्थः । पुनर्देवतावाहनाद्यङ्गसहितं सर्वं कर्म विधाय तोलनीय इति । समस्याशुचित्वनिश्चयो न प्रथमतोलनपर्याये कार्यः । किन्तु पुनस्तौल्यमानस्य समतैव यदि भवति तदा अशुद्धिरवधारणीयेत्यर्थ इति

सृतिचाम्दिकायाम् । यत्तु कैश्चित्स्मिन्नेव प्रयोगे तोलनमुक्तं, तन्न । 'प्रधाना वृत्तावङ्गावृत्तिः' इति न्यायेन तोलनस्य फलसम्बन्धेन प्रधानत्वात् तदा-  
वृत्तौ देवतावाहनाद्यङ्गानामप्यावृत्तेरेवोचितत्वात् । शिक्यादिच्छेदेऽपि  
पुनः समीकृत्य तोलनीय इत्याह—

कात्यायनः,

शिक्यच्छेदे तुलाभङ्गे तथा चापि गुणस्य वा ।

शुद्धेस्तु संशये चैनं परीक्षेत पुनर्नरम् ॥ इति ।

शुद्धिसंशयकारणान्याह नारदः—

तुलाशिरोभ्यामुद्भ्रान्तं विचलं न्यस्तलक्षणम् ।

यदा वायुप्रणुन्नं वा तदा नैकतरं वदेत् ॥ इति ।

अयमर्थः । यदा तुलान्तौ तिर्यक्चलितौ, यदा च समताज्ञानार्थं  
न्यस्तं चिह्नमपैति, यदा च वायुना प्रेरिता तुला ऊर्ध्वमधश्च कम्पते तदा  
जयं पराजयं च न वदेदिति ।

व्यासोऽपि—

कक्ष्यच्छेदे तुलाभङ्गे धटककंटयोस्तथा ।

रज्जुच्छेदेऽक्षभङ्गे वा दद्याच्छुद्धिं पुनर्नृपः ॥ इति ।

कक्ष्यं=शिक्यतलम् । कर्कटौ=तुलोपान्तस्थौ शिक्याधारावीषद्वकौ क-  
कंटशृङ्गसन्निभौ लोहकीलकौ । अक्षः=पादस्तम्भयोरुपरिनिहितस्तुला-  
धारपट इति मिताक्षरा । दार्ढ्यप्रयोजकः कीलक इति हल्युपः ।

यत्तु बृहस्पतिवचनम्—

कक्ष्यच्छेदे तुलाभङ्गे धटककंटयोस्तथा ।

रज्जुच्छेदेऽक्षभङ्गे च तथैवाशुद्धिमाप्नुयात् ॥ इति,

तत् आकस्मिककक्ष्यच्छेदादिविषयम् । कात्यायनवचनं तु दृश्यमानकार-  
णकशिक्यच्छेदादिविषयमिति विज्ञानेश्वराचार्योदयः ।

इति धटविधिः ।

## अथाग्निविधिः ।

तत्र पितामहः—

अग्नेर्विधिं प्रवक्ष्यामि यथावच्छास्त्रचोदितम् ।

कारयेन्मण्डलान्यष्टौ पुरस्तान्नवमं तथा ॥

आग्नेयं मण्डलं त्वाद्यं द्वितीयं वारुणं तथा ।

तृतीयं वायुदैवत्यं चतुर्थं यमदैवतम् ॥

पञ्चमं त्विन्द्रदैवत्यं षष्ठं कौबेरमुच्यते ।



सप्तमं सोमदैवत्यमष्टमं शर्वदैवतम् ॥

पुरस्तान्नवमं यत्तु तन्महत्पार्थिवं विदुः ।

गोमयेन कृतानि स्युराद्भिः पर्युक्षितानि च ॥ इति ।

सावित्रं त्वष्टमं तथा । नवमं शर्वदैवत्यमिति दिव्यविदो विदुः ॥ इति मितक्षरायां पाठः । प्रख्यातदेवतायतनादिपूर्वोक्तदिव्यप्रदेशभूशुद्धि सम्पाद्य तत्र प्राङ्निवाकः सोपवासो नृपाज्ञया प्रवृत्तो नव मण्डलानि कुर्यात् । तानि च प्राक्संस्थानि कर्त्तव्यानि । पुरस्तान्नवमम् इत्यष्टानां मण्डलानां पूर्वभागे नवममण्डलस्य कर्त्तव्यताभिधानात् । पश्चिमे मण्डले स्थित्वेति वक्ष्यमाणवचनलिङ्गाच्च । तानि चाष्टौ क्रमेणाग्न्यादिदैवत्यानि । नवमं महत्=मण्डलान्तरापेक्षयाऽधिकपरिमाणम् अपरिमिताङ्गुलम् । पार्थिवं=पृथिवीदैवत्यम् । ननु मण्डलानामग्न्यादिदैवत्यत्वं न सम्भवति । तत्प्रकाशकत्वाभावात् । तदुद्देशेन त्यज्यमानत्वाभावाच्चेति चेत्, न । 'प्रैतु होतुश्चमसो ब्रह्मण' इति न्यायेन आग्नेयेत्यादिदेवतातद्धितान्तलक्षण-समाख्याबलेनाग्न्यादिदेवतापूजनस्थानत्वेनाग्न्यादिदैवत्यत्वसम्भवात् । अतस्तेष्वग्न्यादिदेवतापूजनं कार्यम् । मण्डलपरिमाणं स एवाह—

द्वात्रिंशदङ्गुलं प्राहुर्मण्डलान्मण्डलान्तरम् ।

अष्टभिर्मण्डलैरेवमङ्गुलानां शतद्वयम् ॥

षट्पञ्चाशत्समधिकं भूमेस्तु परिकल्पना । इति ।

मण्डलान्तरम्=अन्यमण्डलम् । सान्तरालमेकैकमण्डलं द्वात्रिंशदङ्गुलम् । एवञ्चान्तरालसहितैरष्टभिर्मण्डलैरङ्गुलानां षट्पञ्चाशदधिकं शतद्वयं भवति । नवममण्डलस्यापरिमिताङ्गुलकत्वादगणना । मण्डलं सान्तरालं द्वात्रिंशदङ्गुलम् । तत्र मण्डलं षोडशाङ्गुलं षोडशाङ्गुलं तदन्तरालम् ।

तथा च याज्ञवल्क्यः—

षोडशाङ्गुलकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम् ॥ इति । (२।१०६)

तावत्=षोडशाङ्गुलम् अन्तरं=मध्यम् । यत्तु नारदवचनम्—

अतः परं प्रवक्ष्यामि विधिमग्नैर्यथोदितम् ।

द्वात्रिंशदङ्गुलं प्राहुर्मण्डलान्मण्डलान्तरम् ॥

अष्टाभिर्मण्डलैरेवमङ्गुलानां शतद्वयम् ।

चत्वारिंशत् समधिकं भूमेरङ्गुलमानतः ॥ इति । (१)

(व्य०प०१ इलो०२८५।२८६)

तत् नवमाष्टमयोरङ्गुलयोर्यदन्तरालं षोडशाङ्गुलं तस्यागन्तव्यत्वा-

दनन्तराभावेनाङ्गुलानां परिगणनमिति न कश्चिद्विरोधः । यत्तु कल्प-  
तस्कारेण एतदेव वाक्यम्—

चतुर्विंशतिराख्याता भूमेस्तु परिकल्पना ।

इति पठितम् ।

तत् षोडशाङ्गुलस्य प्रथमावस्थानं मण्डलस्यागन्तव्यत्वेन । तद्-  
प्यनन्तर्भावगम्यभूमेरङ्गुलानां परिगणनविषयमिति न कश्चिद्विरोधः ।  
यदा तु दिव्यकर्तुः पदं षोडशाङ्गुलादधिकं तदा तत्पदसम्मितं मण्ड-  
लम् अवशिष्टाङ्गुलमन्तरालमित्येवं द्वात्रिंशदङ्गुलता सम्पादनीया ।

तथा च नारदः—

मण्डलस्य प्रमाणं तु कुर्यात् तत्पदसम्मितम् । इति । (व्य० प० १।२९९)

पितामहोऽपि—

कर्तुः पदसमं कार्यं मण्डलं तु प्रमाणतः । इति ।

अङ्गुलप्रमाणं तु “तिर्यग्बोदराण्यष्टौ” इत्यादिना धटविधिप्रकरणे  
दर्शितम् । यत्तु विष्णुवचनम्—

षोडशाङ्गुलं तावदन्तरमण्डलसप्तकं कुर्यादिति ।

तद्वन्तव्यमण्डलविषयम् ।

स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत् । (२।१०६)

इति याज्ञवल्क्यवचनेन समानार्थकं ज्ञेयम् । यत्तु रत्नाकरे एतच्च मण्ड-  
लसप्तकं मण्डलाष्टकलङ्घनासामर्थ्यं इत्युक्तम् । तदयुक्तम् ।

पश्चिमे मण्डले स्थित्वा प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः शुचिः ।

इति वचनेन—

अष्टमं मण्डलं गत्वा नवमे निःक्षिपेद्बुधः ।

इति वचनेन च मण्डलसप्तकलङ्घनस्यैवोक्तत्वेन मण्डलाष्टकलङ्घ-  
नस्यानुक्तत्वात् । प्रोक्षितेष्वेतेषु प्राग्ग्राः कुशाः प्रसारणीयाः ।

तथा च पितामहः—

मण्डले मण्डले देयाः कुशाः शास्त्रप्रचोदिताः ।

विन्येसश्च पदं कर्त्ता तेषु नित्यमिति स्थितिः ॥ इति ।

ततः प्राङ्मवाकः प्रथममण्डलादक्षिणतो लौकिकमग्निं प्रतिष्ठाप्य  
शान्तिहोमं कुर्यात् ।

शान्त्यर्थं जुह्यादशौ घृतमष्टोत्तरं शतम् ।

इति स्मरणात् । होमश्चात्र ‘अग्नये पावकाय स्वाहा’ इत्यनेन मन्त्रेण  
कुर्यादित्युक्तं व्याख्यातृभिः । ततस्तस्मिन्नग्नौ लोहकारात् पिण्डं  
तापयेत् ।

१९६ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

तथा च नारदः—

जात्यैव लोहकारो यः कुशलश्चाग्निकर्मणि ।

दृष्टप्रयोगश्चान्यत्र तेनायोऽग्नौ प्रतापयेत् ॥

अग्निवर्णमयःपिण्डं सस्फुलिङ्गं सुरक्षितम् ॥ इति ।

(व्य०प०१ इलो०२८८)

सुरक्षितम्=चाण्डालादिस्पर्शो यथा न सम्पद्यते तथा रक्षितम् ।  
अयःपिण्डस्य परिमाणादिकं

पितामह आह,

अस्त्रिहीनं समं कृत्वा अष्टाङ्गुलमयोमयम् ।

पिण्डं तु तापयेदग्नौ पञ्चाशत्पलिकं समम् ॥ इति ।

सममस्त्रिहीनम्=समन्ततः कोणरहितं समवृत्तमिति यावत् । अष्टाङ्गुलम्=  
अष्टाङ्गुलविस्तारं, पञ्चाशत्पलिकं=पञ्चाशत्पलपरिमितं समं तापयेदित्यन्व-  
यः । सर्वतस्तापयेदित्यर्थः ।

यत्तु—

शतार्धपलिकं वृत्तं द्वादशाङ्गुलमायतम् ।

लोहमग्निमयं ध्मातं देयं राज्ञामिशापिनः ॥

इति कालिकापुराणे लोहपिण्डस्य द्वादशाङ्गुलायामत्वमुक्तम् । तदष्टा-  
ङ्गुलेन सह विकल्पितं ज्ञेयम् ।

यत्तु शङ्खलिखिताभ्याम्—

अथवा सप्ताश्वत्थपत्रान्तरितं षोडशपलमपि अग्निवर्णं लौहपि-  
ण्डमञ्जलिवादाय सप्तमपदमर्यादं गच्छेत् ।

इति पिण्डस्य षोडशपलत्वमुक्तम् । तदपि वैकल्पिकम् । सप्तमपदमर्यादं=  
सप्तममण्डलं यावत् । अभिविधिपरोऽत्र मर्यादाशब्दः । केचित्तु षोड-  
शपलसङ्ख्या असामर्थ्यं इति प्राहुः । इदं च पिण्डप्रतापनं त्रिः कर्त्तव्यम् ।

अग्निवर्णमयःपिण्डं सस्फुलिङ्गं सुरक्षितम् ।

पञ्चाशत्पलिकं भूयः कारयित्वा शुचिर्द्विजः ॥

तृतीयतापे तप्तं तं ब्रूयात्सत्यपुरस्कृतम् । (व्य०प०१।२८९)

इति नारदवचने तृतीयतापे तप्तं तमिति लिङ्गात् । सुतप्तमयःपि-  
ण्डमुदके निःक्षिप्य पुनः सन्ताप्योदके निःक्षिप्य पुनः प्रतापयेत् । त-  
स्मिन् काले प्राङ्निवाको धर्मावाहनादिशोधयशिरःपन्नारोपणान्तं सा-  
धारणं विधिं कुर्यात् । वह्निपूजायां चन्दनादेर्विशेषं

पितामह आह,

तत्र पूजां हुताशस्य कारयेन्मनुजाधिपः ।



रक्तचन्दनमाल्यैश्च रक्तपुष्पैस्तथैव च ॥ इति ।

तत्र=अयःपिण्डाग्नौ । हुताशस्य=आवाहितस्य धर्मरूपस्याग्नेः । ततः शोधयकर्त्तव्यमाह—

हारीतः,

प्राङ्मुखस्तु ततस्तिष्ठेत्प्रसारितकराङ्गुलिः ।

आर्द्रवासाः शुचिश्चैव शिरस्यारोप्य पत्रकम् ॥ इति ।

अवस्थितिश्च प्रथमे मण्डले कर्त्तव्येत्याह—

पितामहः,

प्रथमे मण्डले तिष्ठेत्प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः शुचिः ॥ इति ।

तत्र स्थितस्य करौ शोधनीयावित्यप्याह—

स एव,

लक्षयेयुः क्षतादीनि हस्तयोस्तस्य कारिणः ॥ इति ।

कारिणः=नियुक्ताः पुरुषाः ।

नारदोऽपि—

लक्षयेत्तस्य चिह्नानि हस्तयोरुभयोरपि ।

प्राकृतानीव मूढानि सत्रणान्यव्रणानिच ॥ इति । ( न लब्धम् )

शोधनप्रकारं विष्णुराह—

करौ विमृदितव्रीहौ तस्यादावेव लक्षयेत् । इति ।

विमृदिता व्रीहयो याभ्यां तौ । व्रीहिमर्दनं तयोर्ध्यावस्थितरूपज्ञानार्थम् । एवं शोधितयोर्व्रणादिचिह्नेषु सत्सु प्राक्स्थितत्वज्ञानार्थमलकादिरसेन तेषां चिह्नं कर्त्तव्यमिति—

नारद आह,

हस्तक्षतेषु सर्वेषु कुर्याद्धंसपदानि तु ।

तान्येव पुनरालक्षयेद्धस्तौ विन्दुविचित्रितौ ॥ इति ।

(व्य० प०१ श्लो०३०१)

तानि=प्राक्कृतचिह्नानि । पुनः=पिण्डधारणानन्तरम् । ततः प्राङ्मिवाककुत्थं—

याज्ञवल्क्य आह,

करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत् ।

सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्सूत्रेण वेष्टयेत् ॥ इति । (२।१०३)

तावत्=तावत्कृत्वः सप्तकृत्वः सूत्रेण वेष्टयेदिति तावदित्यस्य क्रियाविशेषणत्वमङ्गीकृत्योक्तोऽर्थो मिताक्षरायाम् । तावतां सूत्राणां समाहारस्तावत्सूत्रं तेन । सप्तभिः सूत्रैर्वेष्टयेदित्यर्थः । “सप्तभिः सूत्रतन्तुभिः”

## १९८ वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

इति वक्ष्यमाणनारदादिवचनसंवादी प्रतिभाति । तावच्छब्दः सङ्ख्याश-  
ब्दस्तेन समाहारे द्विगुः स्त्रीलिङ्गत्वाभावाच्च न डीप् त्रिभुवनमिति-  
वत् । सप्तकृत्वो वेष्टनं तु वचनालाभेऽपि शिष्टाचारतः कर्त्तव्यमिति  
मदनरत्ने । वेष्टनं चाश्वत्थपत्रहस्तयोः सूत्रं च शुक्रमित्याह—

नारदः,

वेष्टयात सितैर्हस्तौ सप्तभिः सूत्रतन्तुभिः । इति ।

अश्वत्थपत्राणि सप्तापि समानानि ।

तथा च स्मृतिः—

पत्रैरञ्जलिमापूर्य ह्याश्वत्थैः सप्तभिः समैः । इति ।

शमीपत्रादीन्यप्यश्वत्थपत्राणामुपरि स्थापयेत् ।

तथा च स्मृतिः—

सप्त पिप्पलपत्राणि शमीपत्राण्यथाक्षतान् ।

द्वार्याः सप्त पत्राणि दध्यक्तांश्चाक्षतान्यसेत् ॥ इति ।

पुष्पाणि च तत्र स्थापनीयानि ।

तथा च पितामहः—

सप्त पिप्पलपत्राणि चाक्षतान् सुमनो दधि ।

हस्तयोर्निःक्षिपेत्तत्र सूत्रेणावेष्टनं तथा ॥ इति ।

सुमनसः=कुसुमानि । सूत्रेणेति जातावेकवचनम् । यत्तु स्मृत्यन्तरम्—

अयस्तप्तं तु पाणिभ्यामर्कपत्रैस्तु सप्तभिः ।

अन्तर्हितं हरन् शुद्धस्त्वदग्धः सप्तमे पदे ॥ इति,

तत् अश्वत्थपत्राभावेऽर्कपत्रविधायकं ज्ञेयम् । अश्वत्थपत्राणां पि-  
तामहप्रशंसावचनेन मुख्यतावगमात् ।

पिप्पलाज्जायते वह्निः पिप्पलो वृक्षराट् स्मृतः ।

अतस्तस्य तु पत्राणि हस्तयोर्निःक्षिपेद्बुधः ॥ इति ।

ततस्तप्तलोहपिण्डे प्राड्विषाकस्तत्राग्निमावाह्याग्निमभिमन्त्रयेत्—  
“त्वमग्ने वेदा” इत्यनेन मन्त्रेणेत्याह—

पितामहः,

तापिते तु ततः पश्चादग्निमावाहयेच्छुचिः ।

आवाहनं तु देवानां कृत्वा पूर्वविधानवित् ॥

त्वमग्ने ! वेदाश्चत्वारस्त्वं च यज्ञेषु हूयसे ।

त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वं मुखं ब्रह्मवादिनाम् ॥

जठरस्थो हि भूतानां ततो वेत्सि शुभाशुभम् ।

पापात्पुनासि वै यस्मात् तस्मात्पावक उच्यसे ॥

पापेषु दर्शयात्मानमस्मिन्मान् भव पावक ! ।  
अथ वा शुद्धभावेन शान्तो भव हुताशन ! ॥  
त्वमग्ने ! सर्वभूतानामन्तश्चरासि साक्षिवत् ।  
त्वमेव देव ! जानीषे न विदुर्यानि मानवाः ॥  
व्यवहाराभिशस्तोऽयं मानुषः शुद्धिमिच्छति ।  
तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥ इति ।

विष्णुस्तु “त्वमग्ने सर्वभूतानाम्” इत्यादि “धर्मतस्त्रातुमर्हसि” इत्य-  
न्तं पितामहवचनवदेवाभिमन्त्रणे मन्त्रमाह । तदस्य मन्त्रस्य समुच्च-  
येनाभिमन्त्रणसाधनत्वं न तु विकल्पेन । प्रार्थनीयार्थस्य शोध्यव्य-  
क्तिविशेषनिष्ठतया प्रकाशनेन भिन्नकार्यत्वात् । पितामहेन एकवाक्यतया  
पठनाच्च ।

यत्तु—

तृतीयतापसं तं ब्रूयात्सत्यपुरस्कृतम् ।  
शृण्विमं मानवं धर्मं लोकपालैरधिष्ठितम् ॥ (व्य० प० १।२९०)  
त्वमग्ने ! सर्वदेवानां पवित्रं परमं मुखम् ।  
त्वमग्ने ! सर्वभूतानां हृदिस्थं वेत्सि चेष्टितम् । (२९१)  
सत्यानृते च जिह्वायास्त्वत्तः समुपलभ्यते ।  
वेदादिभिरिदं प्रोक्तं नान्यथा कर्तुमर्हसि ॥ (२९२)  
अनेनादाविदं प्रोक्तं मिथ्या चेदमसौ वदेत् ।  
सर्वथा च यथा मिथ्या तथाग्निं धारयाम्यहम् ॥ (२९३)  
स एष त्वां धारयति सत्येनानेन मानवः ।  
सत्यवाक्यस्य चास्य त्वं शतिो भव हुताशन ! ॥  
मृषावाक्यस्य चास्य त्वं दह हस्तौ च पापिनः । (२९४)

इति नारदोक्तमभिमन्त्रणं विष्णुपितामहाभ्यामुक्तेनाभिमन्त्रणेनैकार्थ-  
त्वाद्विकल्पते । “तुल्यार्थास्तु विकल्पेरन्” इति न्यायात् । यदा नारदो-  
क्ताभिमन्त्रणं क्रियते तदा तदनन्तरं कर्त्तव्यमाह—

स एव,

अमुमर्थं च पत्रस्थमभियुक्तं यथार्थतः ।  
संश्राव्य मूर्ध्नि तस्यैव न्यस्य देयो यथाक्रमम् ॥ इति ।

( व्य० प० १।२९५ )

पूर्वोक्ताभिमन्त्रणमन्त्रार्थं शिरसि निहितपत्रस्थमन्त्रार्थं च संश्राव्य  
तत्पत्रं यथास्थानं निधाय लोहपिण्डो देय इत्यर्थः । यदा तु विष्णुपि-  
तामहोक्ताभिमन्त्रणं क्रियते तदा तस्मिन् कृते कर्त्तव्यमाह—



२०० वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशस्य प्रमाणनिरूपणप्र०

पितामहः— । ।

ततस्तं समुपादाय राजा धर्मपरायणः ।

सन्दंशेन नियुक्तो वा हस्तयोस्तस्य निक्षिपेत् ॥ इति ।

नियुक्तः=प्राङ्गुविवाकः । सन्दंशेन तं=लोहपिण्डं समुपादाय=गृहीत्वा तस्य=शोध्यस्य हस्तयोः निक्षिपेदित्यर्थः । निक्षेपणात् प्राक् पक्षद्वयेऽपि शोध्यमभिन्त्रयेत् । अभिमन्त्रितवतश्च तस्य हस्तयोरुपरि लोहपिण्डं स्थापयेत् ।

तथा च याज्ञवल्क्यः— ( अ०२ )

त्वमग्ने ! सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक ! ।

साक्षिवत्पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम ॥ ( १०४ )

तस्येत्युक्तवतो लोहं पञ्चाशत्पलिकं समम् ।

अग्निवर्णं न्यसेत्पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि ॥ ( १०५ )

पापेभ्य इति ल्यब्लोपे पञ्चमी । पुण्यपापानि पर्यालोच्येत्यर्थः । ब्रूहि=दर्शयेत्यर्थः । इत्युक्तवतः=पूर्वोक्तमन्त्रेणाग्न्यभिमन्त्रणं कृतवतस्तस्य हस्तयो-  
रश्वत्थपत्रादिसहितयोः सूत्रैर्वैष्टितयोरित्यर्थः । गृहीतलोहपिण्डस्य शो-  
ध्यस्य कर्त्तव्यमाह—

स एव,

स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत् । इति । ( २।१०६ )

अस्यार्थविवरणपुरःसरं विष्णुरपि—

ततस्तत्राग्निवर्णं लोहपिण्डं पञ्चाशत्पलिकं समं दद्यात् । तं समा-  
दाय नातिद्रुतं न च विलम्बितं मण्डलेषु पदन्यासं कुर्वन् व्रजेत् । ततः  
सप्तममण्डलमतीत्य भूमौ लोहपिण्डं पातयेदिति ।

मण्डलेषु=द्वितीयादिमण्डलेषु सप्तममण्डलमतीत्य=सप्तमं मण्डलमति-  
क्रम्य अष्टमं मण्डलं गत्वेति यावत् । भूमौ=शुष्काभिनवतृणपुञ्जान्वितायां  
नवममण्डलरूपायामित्यर्थः । वक्ष्यमाणकालिकापुराणवचनानुरोधात् ।

नारदोऽपि—

हस्ताभ्यां तं समादाय प्राङ्गुविवाकसमीरितः । ( १ )

स्थितैकस्मिन्स्ततोऽन्यानि व्रजेत्सप्त त्वजिह्वागः ॥ ( व्य० प० १।२९६ )

असम्भ्रान्तः शनैर्गच्छेदक्रुद्धः सोऽनलं प्रति ।

न पातयेत्तामप्राप्य या भूमिः परिकल्पिता ॥ ( २९७ )

( १ ) पातदर्शस्थाने मु० ना० स्मृतौ स्नातश्च मण्डलस्थश्च ततः सङ्गृह्य पावकम् ।

इत्युक्तवतो 'असम्भ्रान्तः' इत्यर्थं च न दृश्यते । तथा 'न मण्डलमति-  
क्रमेत्' मण्डलं अष्टमं अतयोरर्धयोरत्रत्यक्रमवैपरीत्येन पाठोऽस्ति ।

पुनःकालिय

पुनः परि० सं० .....

## हरिदास-संस्कृत-सीरिज ।

- १ पाणिनीयशिक्षादिसंग्रहः । अर्थात् पाणिनीयशिक्षा  
भाष्यसहिता, अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, गणपाठः,  
वार्त्तिकपाठः, धातुपाठः, परिभाषापाठः, लिङ्गा-  
नुशासन, उणादिसूत्रपाठः, फिद्सूत्रपाठः,  
नवाह्निकभाष्यवार्त्तिकपाठश्चेतद्दशपाठसंग्रहात्म-  
कोऽयं ग्रन्थः मूल्यम्-०-८-०
- २ लघुसिद्धान्तकौमुदी । विषमस्थल टिप्पणी सहिता  
(शिक्षा-सूत्रपाठ-धातुपाठ-गणपाठ-वार्त्तिकपाठ-  
परिभाषापाठ सहिता ) ग्लेज़ कागज मूल्यम् ०-१२-०  
" मोटा रफ कागज " ०-१०-०  
" पतला रफ कागज " ०-८-०
- ३ शब्दरूपावलिः । ( शतशब्दा ) अर्थात् १०० संख्य-  
शब्दानां-रूपाणि । " ०-२-०
- ४ सारस्वतम् । सटीप्पण पूर्वार्द्धम् । " ०-८-०
- ५ पूर्वपक्षावली । सपरिष्कृता । " ०-३-०
- ६ वेदान्तपरिभाषा । धर्मराजाध्वरीन्द्रकृता । शिवदत्त-  
परिडितकृतार्थदीपिकाटीका सहिता । वेदान्ताचार्य  
भट्ट ज्यम्बकरामशास्त्रिकृत विषमस्थलावबोधिन्या  
बृहद्वीपण्या समेता । मूल्यम् १-४-०
- ७ श्रुतबोधः । महाकवि श्रीकालिदासविरचितः ।  
पं० श्री कनकलाल शर्म्मा ( मैथिलेन ) विरचितया  
परितोपयोगिन्या विमलाख्यया संस्कृत टीकया  
भाषाटीकया च समलंकृतः । मूल्यम् ०-३-०
- ८ पुष्टिमार्गीयस्तोत्ररत्नाकरः । पुरुषोत्तमनामसहस्र-  
षोडशग्रन्थसर्वोत्तमस्तोत्रप्रभृति (८५) स्तोत्रग्रन्थ-  
समूहात्मकः । मूल्यम् ०-१२-०
- ९ कर्पूरस्तवः । श्रीमहाकालप्रणीतः । परिडितराजरङ्ग-  
नाथ विद्वद्विरचित दीपिकाख्यटीकया, तथा साहि-  
त्याचार्य परिडित नारायणशास्त्रि खिस्ते-कृत-परि-  
मल नामकया टीकया च समन्वितः । मूल्यम् ०-६-०

प्रकाशक—

जयकृष्णदास-हरिदासगुप्तः—

चौखम्बा संस्कृत सीरिज-आफिस, विद्याविलास प्रेस,  
गोपालमन्दिर के उत्तर फाटक, बनारस सिटी ।

## काशीसंस्कृतसीरीज़-ग्रन्थमाला ।

इयं काशी-संस्कृतग्रन्थमाला विभागशः प्रकाशिता भवति । एतस्यां प्राचीनाः नवीनाश्च  
दुर्लभाः सुलभाश्च अत्युपयुक्ताः संस्कृतग्रन्थाः काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालीयैः  
पण्डितैरन्यैरपि विद्वद्भिः संशोधिताः क्रमेण संमुद्रिता भवन्ति । अस्यां  
प्रकाश्यमाणानां ग्रन्थानां मूल्यं सूचीपत्रे प्रकाशितं वर्तते ।

२५०

- १ नलपाकः नलविरचितः । संपूर्णः ( पाकशास्त्रम् १ ) रु० १—८
- २ संक्षेपशारीरकम् । रामतीर्थस्वामिकृतान्वयार्थबोधिनीटीका-  
सहितम् । ( वेदान्तं १ ) रु० ८—०
- ३ वैशेषिकदर्शनम् । पं० श्रीदुण्डिराजशास्त्रिकृतविवरणोपेताभ्यां  
प्रशस्तपादभाष्योपस्काराभ्यांसमन्वितम् ( वैशेषिकं १ ) रु० २—०
- ४ श्रीसूक्तम् । विद्यारण्यपृथ्वीधरश्रीकण्ठाचार्यकृतभाष्यत्रयेण  
टिप्पण्या च समलङ्कृतम् । ( वैदिकं १ ) रु० ०—६
- ५ लघुशब्देन्दुशेखरः ( भैरवी ) चन्द्रकलाटीकासहितः-प्रथम  
भाग अव्ययीभावान्तः । ( व्याकरणं १ ) रु० ५—०
- ५ लघुशब्देन्दुशेखरः ( भैरवी ) चन्द्रकलाटीकासहितः तत्पुरुषादि-  
समाप्तिपर्यन्तः । द्वितीय भाग ( व्याकरणं १ ) रु० ८—०
- ६ कारिकावली मुक्ता० दिन० राम० शब्दखण्डसहिता तथा “गुण-  
निरूपणदिनकरीय” महामहोपाध्याय पं० श्रीलक्ष्मणशास्त्रि-  
कृतव्याख्यासहिता । ( न्यायं १ ) रु० ६—०
- ७ पञ्जीकरणम् । वार्तिकाभरणालङ्कृतवार्तिकाटीकया-तत्त्वचन्द्रि-  
कासमवेतविवरणेन च समन्वितम् । ( वेदान्तं २ ) रु० ०—८
- ८ अलङ्कारप्रदीपः । श्रीविश्वेश्वरपाण्डेयनिर्मितः । ( काव्यं १ ) रु० ०—८
- ९ अनङ्गरङ्गः । महाकविकल्याणमल्लविरचितः । ( कामशास्त्रं १ ) रु० ०—१२
- १० जातकपारिजातः । श्रीवैद्यनाथशर्मणा विरचितः । ( ज्यो० १ ) रु० २—०
- ११ पारस्करगृह्यसूत्रम् । कात्यायनसूत्रीयश्राद्ध-शौच-स्नान-भोजन-  
कल्पसहितम् । ( कर्मकाण्डम् १ ) रु० ०—८
- १२ पुरुषसूक्तम् । सायणभाष्य-महीधरभाष्य-मंगलभाष्य-नि-  
म्बार्कमतभाष्यचतुष्टयसहितम् । ( वैदिकं २ ) रु० १—४
- १३ श्रीमत्सनात्सुजातीयम्—श्रीमच्छङ्करभगवत्पादविरचितभाष्येण  
नीलकण्ठीव्याख्यया च संवलितम् । ( वेदान्तं ३ ) रु० १—४
- १४ कुमारसंभवं महाकाव्यम् । महाकवि श्रीकालिदासवि० सञ्जीवनी  
शिशुहितैषिणी-टीकाद्वयोपेतम् सम्पूर्णम् । ( काव्यं २ ) रु० १—८
- १५ श्रुतबोधश्छन्दोग्रन्थः । आनन्दवर्द्धिनीतात्पर्यप्रकाशाख्यसंस्कृत-  
भाषाटीकासहितः । ( छंदः १ ) रु० ०—६
- १६ कारिकावली । मुक्तावली-न्यायचन्द्रिकाटीकाद्वयसहिता सटि-  
प्पणा । ( न्यायं २ ) रु० १—०



## काशीसंस्कृतसीरीज ।

२

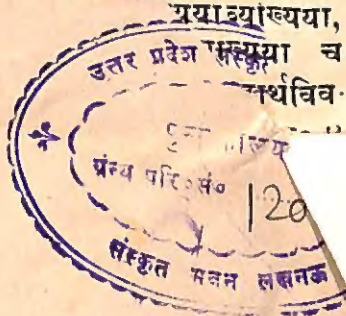
- १७ पारस्करगृह्यसूत्रम् । काण्डद्वये हरिहर-गदाधर० तृतीयकाण्डे ह-  
रिहर-जयराम-प्रणीतभाष्येण समलङ्कृतम् । हरिहरभाष्यस-  
हितस्नानत्रिकाण्डिकासूत्र—गदाधरभाष्यसहितश्राद्धनवक-  
ण्डिकासूत्रैः यमलजननशान्ति-पृष्टोदिवि-शौच-भोजन—  
कामदेवकृतभाष्यसहितोत्सर्गपरिशिष्टसूत्रैः परिष्कृतं-टिप्प-  
ण्यादिभिः सहितं च । ( कर्मकाण्डं २ ) रु० ३—०
- १८ संक्षेपशारीरकम् । मधुसूदनीटीकासहितम् संपूर्णं (वेदान्तं) रु० ८—०
- १९ लघुजुटिका-अर्थात् अभिनवा परिभाषेन्दुशेखरपरिष्कृतिनि-  
र्मितिः । ( व्याकरणं २ ) रु० ०—८
- २० कातीयेष्टिदीपकः । ( दर्शपौर्णमासपद्धतिः ) महामहोपाध्याय-  
पं० श्रीनित्यानन्दपन्तपर्वतीयविरचितः । ( कर्मकाण्डं ) रु० १—०
- २१ सप्तपाठि श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रम् । श्रीगन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य-  
विरचितम् । हरिहरपक्षीय-मधुसूदनीटीकया ( संस्कृतटी-  
का-संस्कृतपद्यानुवाद-भाषाटीका-भाषापद्यानुवाद-भाषा-  
बिम्ब ) पञ्चमुखीनाम्न्या टीकया-शक्तिमहिम्नस्तोत्रेण च  
समन्वितम् । ( स्तोत्रवि० १ ) रु० १—०
- २२ बौद्धाऽऽचार्यश्रीधर्मकीर्तिप्रणीतः सटीकन्यायविन्दुः । भाषाटीका-  
सहितः । ( बौद्धन्याय वि० १ ) रु० १—८
- २३ सपरिष्कृत-दर्पणसहितवैयाकरणभूषणसारः । ( व्याकरणं ३ ) रु० ४—०
- २४ न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका । श्रीवाचस्पतिमिश्रविरचिता । संपूर्ण  
( न्यायविभाग ३ ) रु० ६—०
- २५ मीमांसान्यायप्रकाशः । ( आपदेवीयः ) श्रीचिन्नस्वामिशालिहृतया  
सारविवेचिन्या व्याख्यया सहितः । ( मीमांसा १ ) रु० २—०
- २६ पौरोहित्यकर्मसारः । ( टिप्पणीसमलङ्कृतः ) प्रथमो भागः श्रीरमा-  
कान्तशर्मणा संगृहीतः । ( कर्मकाण्डवि० ३ ) रु० ०—४
- २७ लघुशब्देन्दुशेखरः । म० म० श्रीनागेशभट्टविरचितः अव्ययी-  
भावान्तो भागः, म०म० पण्डित श्रीनित्यानन्दपन्त-पर्वतीय-  
कृतशेखरदीपकाख्येन टिप्पणेन समुज्ज्वलितः । ( व्या० ४ ) रु० ४—८
- २८ रघुवंशमहाकाव्यम् । श्रीकालिदासविरचितम् पञ्चसर्गात्मकम् ।  
म० म० श्रीमहिनाथसूरिकृतसर्जीविनीटीकया पं० श्रीकनक-  
लाल ठक्कुरकृताऽर्थप्रकाशिकाटीकया च समलङ्कृतम् ।  
( काव्य ३ ) रु० ०—१२
- २९ कामसूत्रम् । श्रीवात्स्यायनमुनिप्रणीतं बहुयत्नरासादितया पूर्णया-  
जयमङ्गलरचितया टीकया समेतम् । बहुखण्डितपाठान् परिपू-  
र्य, सूत्राङ्कंश्च संयोज्य, परिष्कृत्य संशोधितम् । ( काम० २ ) यन्त्रस्थ

## काशीसंस्कृतसंरीज ।

- ३० न्यायकसुमाञ्जली । न्यायाचार्यपदाङ्कितश्रीमदुदयनाचार्यविरचितः । म० म० रुचिदत्तकृतमकरन्दोद्भासित म० म० वर्द्धमानोपाध्यायप्रणीतप्रकाशसहितः । (न्यायं ४) रु० ६—०
- ३१ परिभाषेन्दुशेखरः । म० म० श्रीनागेशभट्टरचितः । म० म० भैरवमिश्रविरचितया भैरवीत्यपराख्यया परिभाषाविवृत्या-तत्त्वप्रकाशिकया टीकया च सहितः । (व्याकरणं ५) यन्त्रस्थ
- ३२ अर्थसंग्रहः । पूर्वमीमांसासारसंग्रहरूपः । श्रीलौगाक्षिभास्करविरचितः । श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीरामेश्वरशिवयागिभिभुविरचितमीमांसार्थकौमुद्याख्यव्याख्यासहितः । (मीमांसा २) रु० १—०
- ३३ न्यायवाचिकम् । न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्योपबृंहणम् । परमर्षिभारद्वाजाद्योतकरविरचितम् । महर्षि-गोतमादिचरितसम्बलितबृहत्भूमिकासहितम् । (न्यायं वि० ५) रु० ६—०
- ३४ शुक्लयजुर्वेदसंहिता । वाजसनेयिमाध्यन्दिनशाखीया । श्रीमदुच्चटाचार्यविरचितमन्त्रभाष्येण श्रीमन्महीधराचार्यविरचितवेददीपेन च सहिता । (भाग १-२-३-४) (वैदिकं ३) रु० ८—०
- ३५ शुक्लयजुर्वेदकाण्वसंहिता । श्रीसायणाचार्यविरचितभाष्यसहिता । १ अध्यायादारभ्य २० अध्यायपर्यन्ता । (वैदिकं ४) रु० ६—०
- ३६ सिद्धान्तलेखसंग्रहः । श्रीमदप्पयदीक्षितविरचितः । श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यकृष्णानन्दतीर्थविरचितया कृष्णालङ्काराख्यया व्याख्यया समलंकृतः । (वेदान्तं ४) रु० ६—०
- ३७ काशिका । श्रीपाणिनिमुनिविरचितव्याकरणसूत्राणां वृत्तिः विद्वद्भर-वामन-जयादित्यविनिर्मिता । (व्याकरणं ६) रु० ६—०
- ३८ प्राकृतप्रकाशः । भामहकृतः । श्रीमद्वररुचिप्रणीतप्राकृतसूत्रसहितः । टिप्पण्या च संयोजितः । (व्याकरणं ७) रु० १—४
- ३९ जीवन्मुक्तिविवेकः । श्रीमद्विद्यारण्यस्वामिविरचितः । भाषानुवादसमेतः । (वेदान्तं ६) रु० २—०
- ४० श्रीनारदीयसंहिता । ब्रह्मणोपदिष्टो नारदमहामुनिप्रोक्तो ज्यौतिषग्रन्थः । (ज्योतिषं २) रु० ०—६
- ४१ मेदिनीकोशः । मेदिनीकारविरचितः । (काशं १) रु० १—८
- ४२ मीमांसादर्शनम् । श्रीशबरस्वामिविरचितभाष्यसहितम् । सपूर्णम् । (भाग १—२) (मीमांसा ३) रु० १०—०
- ४३ न्यायदर्शनम् । श्रीगोतममुनीप्रणीतम् । श्रीवात्स्यायनमुनीप्रणीतभाष्यसहितम् । श्रीविश्वनाथन्यायपञ्चाननभट्टाचार्यविरचितन्यायसूत्रवृत्त्यनुगतम् । टिप्पण्यादिसहितम् । (न्यायं ६) रु० ३—०
- ४४ दानमयूखः । विद्वद्भरश्रीनीलकण्ठभट्टविरचितः । (धर्मशास्त्रं १) रु० १—८
- ४५ कालमाधवः । विद्वद्भरश्रीमाधवाचार्यविरचितः । (धर्मशास्त्रं २) रु० १—८



- ४६ भास्वती । श्रीमच्छतानन्दविरचिता । श्रीमातृप्रसाद ( दैवज्ञभूषण ) पाण्डेयेन कृताभ्यां छात्रबोधिनीनाम संस्कृतसोदाहरणभाषाटीकाभ्यां सहिता । ( ज्योतिष ३ ) रु० २—०
- ४७ फक्किकाप्रकाशः । उपाध्यायोपाह्वयैयाकरणकेसरीबिरुद्वान्तमथिलेन्द्रदत्तशर्मविरचितः । पं० सीता टिप्पण्या विभूषितः । गं ८ ) रु० १—४
- ४८ मिताक्षरा । श्रीगैडपादाचार्यकृतमाण्डूक्य व्याख्या-श्रीमत्परमहंसपादाचार्यकृतमाण्डूक्यप्रकाश रस्वतीस्वामिकृता । शंकरानन्दकृतमाण्डूक्योपनिषद् टीका ( वदा०७ ) रु० १—४
- ४९ काव्यप्रकाशः । श्रीमम्मटाचार्यविरचितः । पं० श्रीहरिशङ्करशर्मणा मैथिलेन संगृहीतया नागेश्वरीटीकयाऽलङ्कृतः । ( काव्य० ४ ) रु० ४—०
- ५० अधिकरणकामुदी । श्रीदेवनाथठक्कुरकृता । ( मीमां० ४ ) रु० १—०
- ५१ रघुवंशमहाकाव्यम् । श्रीकालिदासविरचितम् म. म. श्रीमल्लिनाथकृतसञ्जीविनीटीकयोपेतम् पं० श्रीकनकलालठक्कुरेण कृता भावबोधिनीटिप्पण्या समलङ्कृतः संपूर्णम् । ( काव्य ५ ) रु० १—४
- ५२ काथबोधः । साजनीकृत टीकोपेतः । दत्तात्रेय सम्प्रदायाऽनुगतः । रु०—८
- ५३ रसचन्द्रिका । श्रीविश्वेश्वरपाण्डेय निर्मिता । ( काव्य० ६ ) रु० १—०
- ५४ अलङ्कारमुक्तावली । श्रीविश्वेश्वरपाण्डेयनिर्मिता । ( काव्य० ७ ) रु० १—२—०
- ५५ वृत्तरत्नाकरः—मट्टकेदारप्रणीतः । नारायणभट्टीयव्याख्यासहितः । सम्पादकनिर्मितविषमस्थलटिप्पणोपेतः । श्रुतबोधच्छन्दोमञ्जरीसुवृत्ततिलकैश्च समेतः । ( छंद वि० १ ) १—८
- ५६ अलङ्कारशेखरः । केशवमिश्रकृतः । साहित्योपाध्याय श्री अनन्तरामशास्त्रिणा भूमिकादिभिः संभूष्य संशोधितः । ( अलं० वि० १ ) रु० १—४
- ५७ शक्तिवादः । श्रीगदाधरभट्टाचार्यप्रणीतः । टीकात्रयोपेतः । कृष्णभट्टकृतया मञ्जूषया—माधवभट्टाचार्यनिर्मितया विवृत्या श्रीमन्माध्वसंप्रदायाचार्यदार्शनिकसावभामसाहित्यदर्शनाद्याचार्यतर्करत्नन्यायरत्न गोस्वामिदामोदरशास्त्रिरचितया विनोदिन्या च समेतः । ( न्या० वि० ७ ) रु० २—०
- ५८ प्रौढमनोरमा । म. म. श्रीभट्टोजीदीक्षितविरचिता तत्पौत्र म. म. श्रीहरिदीक्षितविरचितलघुशब्दरत्नाख्यव्याख्ययासमेता । म. म. पण्डितश्रीभैरवमिश्रविरचितशब्दरत्नव्याख्यया युक्ता । श्रीयुतभाण्डारीत्युपाह्वमाधवशास्त्रिविरचित प्रभानामकटिप्पण्या समलङ्कृता । श्रीयुतजगन्नाथशास्त्रिविरचितयाव्ययीभावस्य शब्दरत्नप्रदीपकनामकटीप्पण्याऽलङ्कृता ( अव्ययीभावान्त ( व्याकरण वि० ९ ) रु० ५—०
- ५९ आपस्तम्बश्री





- ६० नाट्यशास्त्रम् । भरतमुनिप्रणीतम् ( सम्पूर्णम् ) साहित्योपाध्याय एम.ए. इत्यादिपदवीभाजा पण्डित बटुकनाथ शस्त्रेण तथा साहित्यशास्त्रि एम.ए. पदवीभूता पण्डित बलदेवोपाध्यायेन च सम्पादितम् । ( नाट्यशास्त्र वि० १ ) रु० ५-०
- ६१ काव्यालङ्कारः । श्रीभामहाचार्येण विनिर्मितः । काशीविश्वविद्यालयाध्यापकाभ्यां पण्डित बटुकनाथ शर्मा एम० ए० साहित्योपाध्यायः तथा पण्डित बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्यशास्त्री इत्येताभ्यां भूमिकादिभिः समलङ्कृत्य सम्पादितः, काशी विश्वविद्यालयोपकुलपतिपदं विभूषयद्भिः श्रीमदाचार्यप्रवरैः आनन्दशङ्कर ध्रुव महोदयैः लिखितेन प्राक-कथनेन सनाथीकृतः । ( अलङ्कार वि० २ ) रु० १-८
- ६२ ब्रह्मवादः । गोस्वामि श्रीहरिरायजी महाराज विरचितः । श्रीगोपालकृष्णभट्ट विरचित विवरणाख्यव्याख्यासमलङ्कृतः । तथा गोस्वामी श्रीव्रजनाथविरचितो ब्रह्मवादः । तथा शुद्धाद्वैतपरिष्कारः श्रीमद्रामकृष्णभट्ट विरचितः । श्रीरघुनाथशास्त्रि विरचित शुद्धाद्वैतपरिष्कारतात्पर्यम् । श्रीहरिशङ्कर शास्त्रि-वेदान्तविशारदेन विस्तृतं भूमिकया विविधपारिशिष्टैर्भाषानुवादेन टिप्पण्यादिना च समलङ्कृतः । ( शुद्धाद्वैतसम्प्रदाय वि० १ ) रु० १-०
- ६३ प्रेमरसायनम् । श्रीविश्वनाथपण्डितरचितम् ( का० वि० ८ ) रु० १-०
- ६४ व्यासिपञ्चकरहस्यम् सिंहव्याघ्रलक्षणरहस्यं च । श्रीमथुरानाथतकवागीशकृतम् । न्यायाचार्य पं० शिवदत्तमिश्र विरचित गंगानिझरिणीव्याख्यया टिप्पण्यादि विभूषितं च । ( न्या० वि० ८ ) रु० ०-१२
- ६५ सिद्धान्तविन्दुः । श्रीमधुसूदनसरस्वती विरचितः । श्रीभगवान्शङ्कराचार्य विरचित दशश्लोकव्याख्यारूपः श्रीगोड ब्रह्मानन्दविरचित न्यायरत्नावली-नारायणतीर्थ विरचित लघुव्याख्या टिप्पणीसहितः । ( वेदान्त वि० ८ ) रु० ५-०
- ६६ अन्त्यकर्मदीपकः आशौचकालनिर्णयसहितः । प्रेतकर्मब्रह्मीभूतयतिर्कर्मनिरूपणात्मकः । महामहोपाध्याय पं० श्री नित्यानन्दपन्तपर्वतीय विरचितः । ( कर्मकाण्ड वि० ६ ) रु० १-८
- ६७ सांख्यदर्शनम् । श्रीमद्विज्ञानभिक्षुकृत सांख्यप्रवचनभाष्यसमलङ्कृतम् । ( सांख्य वि० १ ) रु० २-०
- ६८ अनेकार्थसङ्ग्रहो नाम कोशः । आचार्यश्रीहेमचन्द्रेण विरचितः । ( काश वि० २ ) रु० २-०
- ६९ शिशुपालवधम् । श्रीमन्माघकविनिर्मितं श्रीवल्लभदेवकृतया सन्देहविषौषधिव्याख्यया महोपाध्याय श्रीमल्लिनाथकृतया सर्वङ्कुषाव्याख्यया समेतम् । ( सम्पूर्णम् ) रु० ३-८

जयकृष्णदास-हरिदासगुप्तः,

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, विद्याविलास प्रेस,  
गोपालमन्दिर के उत्तर फाटक बनारस सिटी ।





